TO THE READER.

KINDLY use this book very carefully. If the book is disfigured or marked or written on while in your possession the book will have to be replaced by a new copy or paid for. In case the book be a volume of set which single volume is not available the price of the whole set will be realized.

SRI PRATAP COLLEGE,

SRINAGAR.

LIBRARY

Class No. 891.433

Book No. S 55 P

Accession No. 5999

पति भक्ति

मनोहर ऐतिहासिक उपन्यास

* ओ३म् *

पति-भक्ति

मनोहर ऐतिहासिक उपन्यास

लेखकः—

बाबू शिवब्रतलाल वर्म्मन एम० ए०

प्रकाशकः—

नारायणदत्त सहगल एण्डसन्स,

लोहारी दरवाज़ा लाहौर।

द्वितीयवार १०००] अगस्त १६२६ [मूल्य ।।।)

१९२

विरजानन्द प्रेस, मोहनलाल रोड, लाहौर, में बाबू जगतनारायण बी० ए० के अधिकार से छपी।

F/891.433
S55P

5999

शाही सिलसिले के हिन्दी अनुवाद के सर्वाधिकार

नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्स के सुरक्षित हैं।

F No good Book But hand is good.

* ओ३म् *

पति-भक्ति

प्रथम परिच्छेद

प्रेम

तुम जानते हो कि प्रेम क्या वस्तु है? किसी पुरुष को स्त्री से सम्बन्ध है, किसी स्त्री को किसी पुरुष के साथ स्नेह है, दो पुरुष परस्पर एक दूसरे के साथ प्यार करते हैं, दो स्त्रियां एक दूसरी को अनुराग की दृष्टि से देखती हैं, तुम उत्तर दोगे यह प्रेम है। हां इस भाव को प्रेम की पवित्र उपाधि की उपमा देने में कोई इतनी हानि नहीं है, क्योंकि किसी २ दशा में हृदय के यह भाव गहन होकर प्रेम के रूप में बढ़ते हुए पूर्ण होजाते हैं, परन्तु यह अवस्था सौ में से किसी एक की होती होंगी, नहीं तो यह

सम्बन्ध प्रायः शरीर और इन्द्रिय जन्य सीमा तक मर्य्यादित रहकर कुछ दिनोंके पश्चात् लुप्त प्राय होजाते हैं, और इसलिये इन सम्बन्धों को प्रेम कहना भूल भी होगी। संसार अपने प्रयोजन और स्वार्थ के अर्थ एक दूसरे को प्यार करता है। एक काम दूसरे पर निर्भर है। एक का प्रयोजन दूसरे से सिद्ध होता है। इसलिये जीवनके व्यवहारमें शरीर और इन्द्रिय जन्य सम्बन्धमें एक दूसरे से मेल मिलाप हुआ ही करता है, इसमें कोई नई और निराली बात नहीं है। प्रेम इन सब से भिन्न कोई और वस्तु है॥

प्रेम आप अपना आरम्भ और आप अपना अन्त है। प्रेम अन्तःकरण का एक पवित्र भाव है, जो कभी २ किसी किसी पवित्र मनुष्य के शुद्ध अन्तःकरण में निवास करके उसके आस पास पवित्रता की रश्मियों का प्रसार करता रहता है। प्रेम करने वाले अन्तःकरण तो निर्मल हो ही जाते हैं, परन्तु जो दूसरे मनुष्य उसके पवित्र दृश्यों को देखते हैं, वह भी उसके पवित्र प्रभाव से शून्य नहीं रहते, और जिस समय सौभाग्यसे कहीं भी प्रेम के मनोहर और मन को प्रसन्न करने वाले दृश्य के देखने का किसी को अवसर मिल जाता है, उसके जीवन में एकाएक ऐसा परिवर्तन होजाता है, कि मानवी बुद्धि देख कर चकित रह जाती है, और देखने वाले के मन पर ऐसा प्रभाव पड़ता है, कि वह उस पवित्र प्रभाव को अपने हृदय मन और शरीर पर जागृत होते हुए अनुभव करता है।

प्रेम पार्थिव नहीं, वरञ्च गगन मण्डल से अवतीर्ण होता है। दो मनों को एक दूसरे पर निछावर होते देखो, तो समझ लो कि यह दिव्य सुखों के अधिकारी बनकर भूलोक में मेघ के समान बरसे हैं, जिससे मुरझाए और कुम्हलाए हुए मन, हरे भरे और आनन्द से लहलहाने लगते। सूखा हुआ सरोवर सहसा जल से भर जाता है, सूखे हुए कमल मूलसे सिञ्चित हो जाते हैं, उससे अंखुए उत्पन्न हो जाते हैं, हरे हरे चौड़े चौड़े पत्ते जल को घेर लेते हैं और पानी के नीले फर्श पर हरित पत्रों की दरी बिछ जाती है और फिर उसपर अर्धोन्मिलित कलियां निकल २ कर केवल जल पर बिछे हुए हरे पत्तों की शोभा को ही द्विगुणित नहीं करती वरञ्च ऐसा प्रतीत होता है, कि सुन्दरता की चञ्चल रचना सरोवर के गर्भ से निकल कर, ऊपर स्वतन्त्रता की पवन में खिलने आई है। फिर यह कलियां चटकती हैं, उनसे यह दिखाई देता है कि इस रचना ने आनन्द से ईषत्हास्य करके अपने स्निग्ध हृदय को दर्शकों के सन्मुख खोल कर रख दिया है, और कमलों के अन्दर के शुभ्र धूलि कण चमकीले और आभायुक मोतियोंके समान शुभ्र और निर्मल दन्तों से मधुर मुस्कराहट का दृश्य दिखा रहे हैं। फूल खिले, भ्रमर और मधु मक्खियां उनके चारों ओर मंडलाती हुई प्रेममें मुग्ध होकर उनको चूमती हैं। उस समय कमल फूलों की मुस्कराहट का कौतुक जिनकी दृष्टि में आता हो उनको भी असाधारण आनन्द और विशेष प्रकार का सुख मिलता है और वह सुख इस लोक में इन्द्रिय जन्य विषय सुख से सर्वथा भिन्न है॥

यह एक मनोरञ्जक मनोहर दृश्य है, जो हमको सदा, सब स्थानों और प्रत्येक अवसर पर दिखाई देता है। प्रेम को कभी कोई छुपा नहीं सकता। यह वह वस्तु है, जो कभी पर्दे में नहीं रह सक्ती। वर्षा का मेघ तो अन्तरिक्ष लोक से आता है, यहां जिस समय दो प्यार करने वालों के नेत्र मिलते हैं, उनके आभ्यन्तरी नेत्रों से प्रेम के आंसू उमड़ने लगते हैं। स्वाति का जल तो समय पीछे मोती बनेगा, परंतु नेत्रोंके आंसुओंका जल चमकते हुए मोतियों की माला के रूप में तत्काल झरने लगता है, नीरस हृदय आनन्दसे परिप्लुत होकर नेत्रों तक भर जाता है, एड़ी से लेकर चोटी तक हरा भरा हो जाता है, और जिस जिस प्रकार दूध और मीठा मिलकर एक से होजाते हैं, उसी प्रकार यह प्रेम का जल दो भिन्न २ हृदयों को इस प्रकार जोड़ देता है कि फिर उनका वियुक्त करना कठिन होजाता है। प्रेम निर्मलता है, प्रेम में पक्षपात और कपट नहीं है। प्रेम में दिखावा और बनावट नहीं होती। दो मन उसके प्रभाव से सिञ्चित हुए इस प्रकार जुड़ जाते हैं, कि फिर कोई पहचान नहीं सकता कि दोनों में से चाहने वाला कौन है और अभीष्ट कौन है, कौन स्नेही और कौन स्निग्ध है, द्वैतभाव का पर्दा सदा के लिये उठ जाता है और इस प्रकार प्रेमी और प्रीतम एक होजाते हैं।

प्रीतम हम तुम एक हैं; देखन में हैं दोय।
मन से मन को तोलिये, दोऊ मन कबहु न होय॥

जिस समय मन इस प्रकार किसी पर मुग्ध होजाता है फिर उसको किसी प्रकार की भक्ति सेवा वा श्रद्धा की आवश्यकता नहीं होती। रोज़ा, निमाज, भजन, उपासना सब व्यर्थ होजाते हैं। ज्ञानियों को कहो कि वे ज्ञान की पुस्तकोंके अक्षरों, शब्दों और पंक्तियों से अपने नेत्रों को घिसा करें। वास्तविक भक्ति व सच्ची भक्ति केवल प्रेम ही है, सच्चा प्रेमी सच्चे अर्थों में सच्चा विज्ञानी और सच्चा जौहरी है। ध्यान करने वाले योगियों को साधना का परिश्रम उठाने दो। उनको अब तक ज्ञान भी नहीं हुआ, कि सच्ची एकता सच्ची लगन और सच्चा योग एक मात्र प्रेम ही है, और जो बात उन्हें वर्षों के अभ्यास से प्राप्त नहीं होती वह यहां निमेष मात्र में, एक बार देखने मात्र से, एक कटाक्ष के आर पार होजाने से मिल जाती है। यही सच्चा आलिंगन है, यही वास्तविक योग है यही सब कुछ है। यही कामना का आदर्श, यही उद्दिष्ट स्थान, मोक्ष काम और भक्ति व उपासना का तत्व है॥

वेदान्ती कहता है:—

प्रेम की मन में जला ले तू अगन।
छोड़ दे सब पाठ पूजा की लगन॥

यदि हम में से किसीको इस प्रकारके सच्चे प्रेमका दृश्य संसार में दिखाई पड़े, तो समझ लो कि वे देवता हैं, पार्थिव मनुष्य नहीं हैं। पार्थिव तत्व के पदार्थ क्षण २ में परिवर्तन शील होते हैं परन्तु यहां नाम के लिये भी कहीं परिवर्तन नहीं

होता। प्रेमरूप पक्षिराज श्येन जिस वृक्षके ऊपर अपना घोंसला बना लेता है, फिर विषय और वासना रूप पक्षियों की क्या शक्ति है, कि वे अपने अपने घोंसलों को रच सकें ॥

प्रेम का सिंह जिस जंगल व कछार में आकर गर्जने लगता है, अभिमान के हस्ती, लोभके हरिण, पक्षपात के भेड़िये अपनी अपनी मांद को छोड़ कर भागजाते हैं। उसके सन्मुख आना तो एक ओर, उनको इतना भी साहस नहीं होता कि उस के निवास के समीप दो चार क्षण के लिये ठहर सकें। प्रेम में छोटाई बड़ाई नहीं होती, न उसे यहां कोई बुरा वा भला है।

यह जब मिलेगा, समानता और सम भाव में मिलेगा और संसारिक बंधनों को, जो वस्तुतः भ्रम और भ्रांति मूलक हैं क्षण मात्र में तोड़ देगा।

विपत्ति प्रेम का सुख है, और कंटीला मार्ग प्रेमकी साफ और सुथरी सड़क है, जिस पर गुलाब की पंखड़ियां बिछी हुई होती हैं। प्रेम गूंगा है, इसके यहां होठ हिलाने की कान है! यह क्या वस्तु है? कोई क्या बताए, इस रहस्य के खोलने की कुञ्जी किसी सच्चे ईश्वर भक्त को ही प्राप्त होती है, दूसरों को इसका क्या पता है। प्रेम क्या वस्तु है, किसी आप्तसे पूछना चाहिये।

किस विधि यह मन जात है, किस ने यह गति कीन।
हम तुम क्या कुछ कह सकें, पूछहु कोऊ मन हीन ॥

यह प्रेम कई प्रकार से मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होता है। इस के आविष्कार का एक कारण रूप है, दूसरी वाणी तीसरा मन है।

जिस समय हम किसी के रूप को देखते हैं, उसके सौंदर्य की किसी छबि को नेत्र मार्गसे हम अपने हृदयमें उतार लेते हैं, और रात दिन उस की मूर्त्ति में मग्न रहते हैं, यह पहला कारण है। हम किसी की सुन्दरता को सुनकर उसकी उपमा को कानके राह हृदय में प्रवेश कर के उसी के ध्यान में लीन रहते हैं, यह दूसरा कारण है। हम किसी की सुशीलता और निर्मल स्वरूप के भावको अपने हृद्गत करके रातदिन अपते आपको दृढ़ करने में लगे रहते हैं, यह तीसरा कारण है इत्यादि॥

दूसरा परिच्छेद।

रूप

रा खनगार जूनागढ़ का राजा था, जो उस समय सोरठ देशकी राजधानो थी। गिरनार पर्वत इसी प्रांत में है जो प्राचीन काल में साधु, योगी यति और नाथों का निवास बना हुआ था। उस श्यामल भूमि में गिरनार की वही स्थिति थी जो उत्तरीय भारतमें

हिमालय वा विंध्याचल की है। गिरनार निजरूपसे यद्यपि गिरि माला विशेष न कही जाय, क्यूंकि वास्तवमें वह विंध्याचल की ही एक शाखा है. परन्तु प्राचीन समय में वह विशेष प्रकार का पवित्र पर्वत समझा जाता था यद्यपि आजकल वहां एक मुस-ल्मान नवाब शासन करता है, परंतु अब भी उसमें स्थान २ पर सुंदर मंदिर बने हुए हैं। कहीं पर्वतकी उपत्यका में गुफाएं भी मिलती हैं, जो योग के अभ्यास करनेवालों की इस समय में भी जीवत जागत स्मृति है, हिंदू इसको तीर्थ समझते थे। जैनी भी उसे विशेष श्रद्धासे देखते थे। बौद्धोंके वहां पहले बहुतसे विहार थे, वह जैसा पहले था अब भी कुछ वैसा ही है, उसके गौरव को काल की निर्दयी ठोकरने कोई क्षति नहीं पहुँचाई। यह सत्य है कि बौद्धोंका अब चिन्हमात्र भी वहां शेष नहीं है, परंतु हिंदु और जैनी अबभी वहां प्रतिवर्ष सहस्रों और लाखों की संख्यामें तीर्थ यात्रा करने जाते हैं अपने धार्मिक कर्त्तव्यों को पूर्ण करते हैं॥

राखनगार यहां ही का राजा था। सद्भाव सदाचार सुशीलता, कुलीनता, प्रकृतिने उसे सब प्रकारके गुणोंसे परिपूर्ण कर रखा था और जिन अनाथ दीन जनों को कहीं भी आश्रय नहीं मिलता था वह उसके राज्यमें विश्राम पाते थे। उसके दान का द्वारा प्रत्येक निर्धन दरिद्रीके लिये सदैव खुला रहता था, और यद्यपि उसका राज्य इतना विस्तृत नहीं था, परंतु विस्तृत वा उदार हृदय होनेके कारण उसके यश की ख्याति दूसरे राजाओं के लिये ईर्षा और द्वेश का कारण थी। राजा की समय चर्या

यह थी कि वह रातदिन राज्यके काम में लीन रहता था। मन्त्री, उपमन्त्री, नियन्ता, योद्धा और अन्य दर्बारी गण सब थे, परन्तु यह न तो किसी के हाथ से अपने विशेष कार्यको करवाता था और न दूसरों के नेत्र से, और राजाओं की भांति प्रजा की अवस्था को देखा करता था। सरदी हो वा गरमी, वर्षा हो वा आंधी व धूल मट्टी की ऋतु, राजा सदैव भ्रमण में रहता था और देश के प्रत्येक प्रान्त में जाकर स्वयं प्रजाकी अवस्था का परिचय लिया करता था।

एकबार वह भ्रमण करता हुआ मझोढ़ी गांव में आया। राजकीय डेरा बस्ती के बाहर खड़ा कर दिया। गांवके लोगों ने राजा का आगमन सुन कर अपनी शक्ति के अनुसार खान पान का प्रबन्ध कर दिया। जो सामग्री जिस के पास थी वह अपने सिर पर उठा कर लाया।

इन निर्धन गांव निवासियों के बीच में एक थोड़ी आयु वाली परन्तु रूपवती कन्या थी वह मटीके भाण्डे बरतन लाई। शिरपर भारी बोझा था। सेनाके मनुष्य औरों का बोझा उतारने लगे कन्या के हाथ पांव थिरक रहे थे। राखनगार की दृष्टि स्वयं उस पर पड़ी। वह राजा था मन के भावों को गुप्त रखने में प्रसिद्ध था, परन्तु रूप का जादू प्रबल होता हैं, राजा व रंक सबही उसके प्रभाव के नीचे आजाते हैं, कन्या फटे पुराने वस्त्र पहने थी। शरीर पर कोई भूषण नहीं था, ऐसी दशा में रूप का लावण्य और तेज और भी बढ़जाता है। वह उसकी ओर स्वयं

झुका, अपने हाथ से उसका बोझा उतारा। राजाको इस दरिद्र कन्या की ओर झुके हुए देख कर कई सिपाही उधर झुके। राजा ने हंस कर कहा "तुम दूसरों को सहायता दो, मैंने इसके भाण्डे उतार लिये हैं।" ये आज्ञा पाकर वे वहां से चले गये। राजा ने फिर सिर से पाओं तक उस कन्या को देखा, ऐड़ी से चोटी तक वह सौन्दर्य के सांचे में ढली हुई थी। उस की आयु इस समय ग्यारह वा बारह वर्ष से अधिक नहीं होगी राजा ने पूछा "तू कौन है?

कन्याः—मैं जाति की कुम्हार हूं।

राजाः—यह तो मैं जानता हूं।

कन्याः—फिर मैं और क्या बताऊं?

राजाः—तेरे पिता का क्या नाम है?

कन्या—उसका नाम हड़मती है?

राजा—हड़मती नाम का तो यहाँ पहिले कोई मनुष्य नहीं रहता था।

कन्या—हम लोग यहां के आदिम निवासी नहीं हैं?

राजा—फिर तू कहाँ की रहने वाली है?

कन्या—बचपन में अपना देश छोड़ना पड़ा, मुझे पूरा २ पता नहीं है, कि मेरा जन्म कहां हुआ, पिता सब कुछ जानते हैं।

राजा—तू बड़ी रूपवती है।

कन्या लज्जित हुई, मन में तो आया कि चुप रहे, परन्तु भोली भाली, गाँव के रहने वाली थी, उसने सोचा कि यदि चुप रहतीहूं तो न जाने राजा क्या समझे, इस लिये उसने दबी बाणी से कहा "यह आप की दया है"

राजा हंसा "लड़की ! तू क्या कहती है ? क्या तू मेरी दया से रूपवती जन्मी है ? यह तेरी भूल है, कुम्हार निःसन्देह मिट्टी के भाण्डे सुन्दर बना सक्ता है, परन्तु देश के राजा को प्रजा के सुन्दर वा कुरूप बनाने में क्या सम्बन्ध है ? कन्या झिझकी, सोच समझ कर बोली "कृपासागर ! राजा को सब प्रकार की समर्थ है" ॥

राजा ज़ोर से हंसा "वाह वाह, तू ने आज अचम्भे की बात सुनाई है, अब तक तो मैं अपने आपको कुछ और ही समझ रहा था, आज तू मुझे सर्व शक्तिमान और सर्व कर्म समर्थ कह रही है' ॥

कन्या ने मन में सोचा "कदाचित् बात करने में भूल हुई, वह मुखर और चंचल नहीं थी, गाँवों में रह कर कन्याओं में इतना साहस नहीं होता, कि वह किसी सेठ वा राजा के सन्मुख निर्भय होकर बात चीत करे, और फिर यह कन्या कुम्हार की थी, उस विचारी को कहां साहस था, कि देश के राजा की बातों का यथोचित उत्तर दे सक्ती, परन्तु उसने अपने मन को सम्भाला और कांपती हुई बाणी से कहा "मैं ग्राम की रहने वाली हूं, बात चीत करने का मुझे ढंग नहीं

है। मैं तो समझती हूं, कि राजा में सब से अधिक शक्ति होती है॥

राजा—परन्तु राजा सुन्दर और रूप प्रजा कैसे उत्पन्न कर सक्ता है?

कन्या के हृदय को राजा की बातों से गति प्राप्त होने लगी। वह करुणा का स्वभाव रखता था, इससे भिन्न कन्या का असाधारण रूप का जादू उस पर अपना काम कर चुका था, उसकी भोली भाली बातों से वह और भी मंत्र मुग्ध के समान अपने आपको भूल गया था, आकर्षक और सहानुभूति दूसरों के दबे हुए हृदयों को उभार देती है। कन्या ने कहा "जैसे आप हैं वैसी ही आप की प्रजा होगी। महाराज की जय हो; गांव के लोग कहते हैं जैसा राजा वैसी प्रजा"॥

राजा—तो इसका तो यह अर्थ है, कि मैं भी रूपवान मनुष्य हूं यह मैंने आज तेरे मुख से नयी बात सुनी है, कि रूपवान राजा की प्रजा भी रूपवान होती है। तू ने मुझे पहिले सब से अधिक शक्तिमान बतलाया, अब सुन्दर स्वरूप बतलाती हो, क्या मैं रूपवान् हूं?

कन्या लज्जित हुई, उसे सभ्यता का क्या ज्ञान न था, परन्तु क्योंकि राजा की हार्दिक सहानुभूति का उस पर असर हो रहा था उसने साहस करके उत्तर दिया "हां महाराज! आप बहुत सुन्दर हैं॥

राजा फिर ज़ोर से हंसा "मैं क्यों कर सुन्दर हूं?"

कन्या—यदि आप सुन्दर न होते तो निर्धनों के साथ इस प्रकार खुल कर बात चीत न करते, जो दीन दुखियों पर दया करता है वही सुन्दर है ॥

राजा—तो फिर मुझे तू सुशील व सुन्दर स्वभाव कह ले, सुन्दर रूपवान क्यों कहती है ?

कन्या—जो जिसके अन्दर रहता है, वही तो बाहर निकलता है, घड़े के अन्दर जिस प्रकार का जल होगा वही तो दूसरे भाण्डे में उण्डेला जायेगा ॥

राजा—यह दो भाण्डे कौन हैं ?

एक आप, दूसरी मैं।

राजा—जल कैसे उण्डेला जा रहा है ?

कन्या—जल मन का भाव है, बातचीत है, आप के मन में जो भाव है वह उसी प्रकार आप के मुख से निकल कर मेरे कानों के राह से मन में समा जाता है, जिस प्रकार घड़े का पानी लुटिया में चला जाता है ॥

राजा ने ध्यान से सोचा "यह कन्या बड़ी समझदार है, कुम्हार के घर पली हुई भी तर्क और युक्ति की बातें कर रही है। उसने कहा "सुन्दरी ! अब तक मैं तुझे रूपवती ही समझता था अब सुशील और गुणवती भी समझता हूं, कुम्हारी में ऐसी समझ बूझ नहीं आती' ॥

कन्या—यह आप की दया है ॥

राजा—फिर वही बात, इसमें मेरा दया क्या है।

कन्या—यदि आप इतने मुझ पर दयालु न होते, तो मुझे बात करने का साहस कहां होता, मैं आपको प्रेरणा और साहस देने से बोल रही हूं और जो कुछ कह रही हूं वह केवल आप ही की दया का प्रतिबिम्ब है। गोल घड़े की चांदनी में गोल ही छाया पड़ती है। चौड़े की चौड़ी छाया पड़ती है। आप अच्छे न होते तो मुझे आप कभी अच्छा न समझते। जो अच्छा कहता है, अच्छा फल पाता है। जो अच्छा सोचता है, उसे सब स्थानों पर अच्छा ही अच्छा दिखाई देता है॥

राजा—छोटी सी अवस्था में तू ने ऐसी ज्ञान की बातें कहां सुनी थीं ?

कन्या--मेरे घर में कभी २ एक साधू आते हैं, पिता जी उनका बहुत आदर करते हैं, यह बातें मैंने उन्हीं से सुनी थीं।

राजा—बाले ! मैं आज तुझे देख कर बहुत ही प्रसन्न हुआ हूं॥

कन्या—और मुझ से अधिक भाग्यवती आज संसार में कौन है, जिसके सिर के बोझ को आपने अपने हाथों से उतारा, क्या मैं आयु भर इसे भूल सक्ती हूं ?

राजा उसके इन अन्तिम बचनों को सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ। बातचीत में पंद्रह बीस मिनट बीत गये थे, उसने फिर अधिक बातचीत न की। सैनिक आश्चर्य में पड़

हुए ये कि राखन गार को आज हो क्या गया है, जो एक दरिद्र कुम्हारी के साथ इतना समय नष्ट कर रहा है परन्तु वे क्या समझ सक्ते थे कि वह एक रूपसी की मोहनी छवि से घायल हुआ है ॥

राजा ने अपने हाथ से अंगूठी उतारी और दो चार रुपये कन्या को देकर बोला "रुपयों को खर्च करना, अंगूठी को संभाल कर रखना। जब कभी आवश्यक्ता पड़े, यह अंगूठी सीधा मेरे पास पहुंचने में तुझे सहायता देगी। जा हड़मती अपने पिता को मेरे पास भेज दे, मैं उससे कुछ पूछना चाहता हूं" ॥

कन्या ने अंगूठी और रुपये ले लिये, हाथ बांध कर नमस्कार किया, और प्रसन्न हुई उछलती कूदती गाओंकी ओर चली गई। पिता को राजाका सन्देशा सुनाया, रुपये और अंगूठी दिखाई ।

राखन गार मन ही मन कुछ सोचता हुआ अपने कैम्प में गया ॥

तीसरा परिच्छेद ।

हड़मती और राखनगार

दूसरे दिन प्रातःकाल हड़मती कुम्हार राखनगार के शिविर में आन कर उपस्थित हुआ, द्वारपाल ने राजा को समाचार दिया, तत्काल अन्दर बुलाया गया, प्रणाम की, राजा ने पूछा "क्या तुम हड़मती हो" ?

हड़मती—हां सरकार ! मेरा यही नाम है।

राजा—तुम यहां के रहने वाले नहीं जान पड़ते, तुम्हारी चालढाल किसी अन्य देश की है।

हड़मती—सत्य है महाराज ! परंतु अब मैं सरकार ही की प्रजा हूं।

राखनगार—यहां कब से रहते हो ?

हड़मती—केवल डेढ़ वर्ष हुआ है।

राखनगार—तुम्हारी जन्म भूमि कौनसी है ?

हड़मती—मैं पहले सिन्धु देश का निवासी था, अन्नजल यहां खैंचकर ले आया, अब मेरा यही अपना देश है, अब यहां ही रहूंगा और यहां रह कर सरकार को आशीश देता रहूंगा।

राखनगार—बहुत अच्छा ! मै तुमको देखकर बहुतप्रसन्न हुआ, क्या तुम जानते हो कि मैंने तुमको क्यों बुला भेजा है।

हड़मती—मेरी कन्या रानकदेवी कल सायंकाल सरकार

के लिये बरतन भाण्डे लाई थी। सरकार ने उसे कुछ रुपये और एक सोने की अंगुठी दी, वह उछलती कूदती घर गई, मुझसे कहा सरकार ने बुलाया है और मैं उपस्थित हुआ।

राखनहार—तुम्हारी कन्या बहुत रूपवती है और उसकी समझ बूझ अच्छी है।

हड़मती—हां वह ऐसी ही है, कल वह जब से सरकार को देख गई है। हर्ष से फूले नहीं समाती।

राखनगार—हर्ष की तो इसमें कोई बात नहीं।

हड़मती—सरकार! हम निर्धन जन हैं, संसार में निर्धनता से बढ़कर कोई दुःख नहीं होता, एक तो मैं दरिद्र हूं दूसरा जाति का कुम्हार "एकतो कड़वा करेला और दूसरा नीम चढ़ा" ऊंची जाति वाले हमसे सीधे मुख बात तक नहीं करते, बात करना तो एक ओर रहा, वे हमको कुत्ते बिल्लियों तक से अधिक अपवित्र समझते हैं, और यदि सरकार का अनुग्रह देख कर मेरी कन्या को इतनी प्रसन्नता हुई है तो इसमें आश्चर्य्य की कोई बात नहीं है। सरकार का दयालु होना हमारे सौभाग्य का प्रमाण है नहीं तो और कोई मनुष्य हमसे कहां बात करने लगा था।

राखनगार—तुम सत्य कहते हो, हिन्दुओं में ऊंची नीची जाति के कल्पित भाव ने बहुत बुरा रूप धारण किया है, परन्तु क्या किया जाये, चिरकाल से यही रीति प्रचलित हुई २ है।

हड़मती—यह हमारे पूर्व जन्मों के किये हुए पापों का फल है, कि हम नीच जाति में उत्पन्न होकर इतने अपवित्र समझे

जाते हैं, नहीं तो प्रत्यक्ष में ब्राह्मण और शूद्र के रक्त में कोई भेद नहीं दिखाई देता, शास्त्रों ने हमको अपवित्र बना रक्खा है।

राखन गार—किसी समय में किसी राजा ने किसी कारण विशेष से यह रीति बनाई होगी, वह अब तक चली आती है, मैंने हिन्दुओं के बर्ताव में परिवर्तन करना चाहा, परन्तु अभी तक कुछ फल नहीं निकला, मैं तो किसी को अपवित्र नहीं समझता।

हड़मती—यह सरकार की कृपा है, और इसी विचार से तो मैंने सोरठ देश में आकर निवास किया है, सरकार के राज्य में बाघ बकरी और भेड़िया एक घाट पानी पीते हैं, सिंह के अंक में हरिण सुख से सोता है किसी को किसी का भय नहीं है, क्या आश्चर्य है जो सरकार की कृपा से जो अपवित्रता का कलंक हमारे जैसी नीच जातियों पर लग गया है दूर हो जाये, और उनके वर्ण रूप के भेद का निन्दित व्यवहार दूर हो जाए।

राखन गार—ईश्वर करे ऐसा ही हो, परन्तु मैंने तुम को इस समय किसी विशेष बात के पूछने के लिये बुला भेजा है।

हड़मती—आज्ञा कीजिये, मैं जो जानता हूं बता दूंगा।

राखन गार—तुम बहुत चतुर और बुद्धिमान हो तुम्हारी कन्या रूपसी और तीक्षण बुद्धि वाली है, क्या तुम सच मुच कुम्हार हो हो अथवा किसी कारण से तुम ने यह

भेस बना रखा है, कुम्हारों में न कहीं ऐसा रूप दिखाई देता है और न यह समझ बूझ देखी जाती है।

हड़मती मन में डरा, दो चार क्षण सोचता रहा अन्त में वह बोला :—

"सरकार! रूप और बुद्धि पर किसी जाति का पैत्रिक अधिकार नहीं है आप ही की निर्धन और नीच जाति वाली प्रजा में बहुत से बालक तथा कन्याएं ऐसी मिलेंगी जो शिक्षा दिये जाने पर जाति और देश का एक बहु मूल्य अंग बन सकती हैं। परन्तु शोक तो इस बात का है कि उनकी ओर किसी का ध्यान नहीं है, और न उनको ऊंचे होने का कोई अवसर मिलता है, न उनकी दबी हुई और छिपी हुई योग्यता के प्रकट होने की कहीं सामग्री हैं।

रावनगार—हड़मती! मुझे तुम्हारी बातों से निश्चय हो रहा है कि तुम वह नहीं हो जो इस समय बने हुए हो, तुम्हारे बचन इस प्रकार के हैं, जो केवल पढ़े लिखे मनुष्यों की वाणी में हो सकते हैं, तुम्हारा एक एक शब्द सच्चा है, मैं चिरकाल से इसी चिन्ता में हूं कि सब के लिये शिक्षा का द्वार एक जैसा खोल दूं।

हड़मती—तब तो फिर एक बार राजा भोज का समय आ जायेगा, उस राजा ने अपने देश में आज्ञा दे रखी थी कि उसकी प्रजा में से कोई मनुष्य भी अशिक्षित न रहे, यदि कोई मनुष्य संस्कृत न पढ़े अथवा अपनी सन्तान को

कलाकौशल न सिखाये तो उस को मालव देश से जन्म भर के लिये देश निकाला दिया जाए उस के राज्यत्व काल में विद्या और कौशल की उन्नति की ध्वजा शिखर पर लहरा रही थी, तेली, तम्बोली, भड़भूंजे और कलाल तक संस्कृत के महान पण्डित बन गये थे, परन्तु शोक है, जाति और वर्ण के अभिमान ने उस के परलोक गमन के पश्चात् ही फिर उसी मूर्खता के गड़े में डाल दिया, और उस पर इतना और अधिकता कर दी कि पहले तो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य जाति की स्त्रियां पढ़ी लिखी होती थीं, भोज के पीछे उन बिचारियों को भी विद्या के धन से वञ्चित कर दिया, और शास्त्रों से यह सिद्ध कर दिया कि स्त्रियां चाहे किसी वर्ण की भी हों, वे शूद्र हैं और न उन का यज्ञोपवीत संस्कार हो सकता है इस लिये उन को पढ़ने पढ़ाने का कोई अधिकार नहीं है, और इस भूल का यह फल हुआ कि माताएं मूर्ख रहने से उन की सन्तान स्वयमेव मूर्ख हो गई, और क्षत्रिय वैश्य तो सब के सब कोरे ही हैं, ब्राह्मणों में भी सौ पीछे दो चार मनुष्य शास्त्रों के पढ़ने वाले मिलते हैं, सिन्ध, कच्छ, गुजरात आदि प्रान्तों की यही अवस्था है और आप के राज्य में भी यही दृश्य दिखाई पड़ता है यदि सरकार ने इस पतित अवस्था से कदाचित पुनरुत्थान किया तो संसार आप को दूसरा राजा भोज कहने लगेगा।

राखनगार—मैं ऐसा करने का यत्न करूंगा, परन्तु

मैंने अभी तुम से जो प्रश्न किये हैं उन का उत्तर चाहता हूं, मेरे मन में यह बात बैठ गई है कि तुम्हारे जैसी योग्यता और तुम्हारी कन्या जैसा रूप कुम्हारों में कहीं दिखाई नहीं देता, तुम कुम्हार नहीं हो।

हड़मती—सरकार! मेरी कन्या रानकदेवी कुम्हारी नहीं है यहां तक तो सरकार की कल्पना सत्य है परन्तु मेरी जाति कुम्हार ही है, सिन्धु देश में मुझे शिक्षित जनो की संगति मिल गई थी, इस कारण से मैं शिक्षा का प्रेमी बन गया था, काल की कठोर गति ने मुझे स्वदेश से निकाल परदेशों में घुमाया, और क्योंकि कुम्हार अपने पैत्रिक कर्म्म से अन्य और कोई काम नहीं कर सकता, इस लिये मैं कुम्हार का कुम्हार बना हूं और अपने सजातीयों के अन्दर उन्हीं के समान आजीविका करता हूं।

राखनगार—अस्तु, मेरी कल्पना सर्वथा झूठ नहीं निकली, अब तुम यह बताओ कि यह रानकदेवी वास्तव में किस वंश और कुल से सम्बन्ध रखती है?

हड़मती—यह सिन्धु देश के पंवारभूमि के राजा देवाड़ की पुत्री है और वंश से राजपूतनी है।

राखनगार के नेत्र आनन्द से चमक उठे "यह तुम्हारे हाथ कैसे लगी?"

हड़मती—रानकदेवी अशुभ लग्न में जन्मी थी, राजा के ज्योतिषियों ने कहा कि यह जिस घर में रहेगी, वह घर

नष्ट हो जायगा, सम्भव है कि ज्योतिषीओंका यह निर्णय सत्य हो और कदाचित असत्य भी हो, राजा देवाड़ मन में डरा उसे ज्योतिषपर बहुत विश्वास है, कन्या सुन्दर बहुत थी रानी उस से कभी वियुक्त होना न चाहती थी, राजा ने उसे छल से मँगवाया और अपने विश्वस्त अनुचरों द्वारा जंगल में लेजा कर एक गढ़े में डाल दिया ताकि जंगली जीव उस निर्दोष बालिका को खा जाएं; मैं भाण्डे बनाने के लिये उसी गढ़े से मट्टी खोद कर लाया करता था, जब बड़ी भोर वहां पहुंचा, बालिका रो रही थी मेरी अपनी कोई सन्तान नहीं थी मुझे उस पर दया आई, अपने घर उठा लाया, मेरी स्त्री ने उसे गौ का दूध पिला कर पाला, अभी दो एक सप्ताह से अधिक समय नहीं बीता था कि नगर में यह चर्चा फैल गई कि राजमहल से राजकन्या को कोई उठा लेगया मैं मन में डरा, कि कोई मनुष्य मुझ से कन्या को छीन कर न ले जाय अथवा राजा कदाचित दोबारा उसके वध की आज्ञा न दे दे, मैं उसे लेकर अपनी स्त्री सहित कच्छ देश में चला आया और कई वर्ष कन्थकोर नामक गांव में रहा, वहां ही यह सयानी हुई यह इसका संक्षिप्त वृत्तान्त है।

राखनगार—परन्तु तुमने कन्थ कोर को क्यों छोड़ा ? क्या वहां किसी प्रकार का कष्ट हुआ था ?

हड़मती—क्या कहूं "इस रानक के लिये मुझे बड़ी विपत्तियां सहनी पड़ीं जब मेरी कन्या आयु में दस ग्यारह

वर्ष की हुई, उसके रूप और सौन्दर्य्य की चर्चा दूर दूर तक फैल गई, कच्छ देश के राजा राओ लाखा फूलानी ने भी सुना, वेश बदल कर कन्थ कोट में आया, अपने नेत्रों से कन्या को देखा मुझे बुला भेजा, और उसके साथ विवाह देने की प्रार्थना की, मैंने कहा कि कुम्हार की कन्या से क्षत्रिय राजा का विवाह लोक में निन्दनीय होता है, परन्तु उसने मेरी एक बात भी न सुनी और मुझसे कहा "मैं इस कन्या को अपनी पटरानी बनाऊंगा।" मेरे भी मनमें आया कि इस कन्या को इसे विवाह दूं।

राजा से कहा "मैं अपने भाई बन्धुओं से पूछ कर उत्तर दुंगा" उसे निश्चय था क्योंकि राजा को अपने बल पर बहुत बड़ा भरोसा होता है, परन्तु जब मैं दरबार से घर वापस आया और अपनी स्त्री के साथ विचार किया, वह सहमत नहीं हुई, रानक ने भी कहा "पिता जी ! मुझे ऐसे पुरुष के घर भेजो जिसे मैं प्रेम कर सकूं और जिसके यहां अनेक स्त्रियां न हों, मैं अत्यन्त सोचनीय दशा में फंसा और कि कर्तव्य विमूढ़ हुआ विवश होकर अपने परिवार सहित रातों रात कंथ कोट से भाग कर कठिन मार्गों में चलता हुआ मझोड़ी में आया, यहां मुझको विश्वास दिलाया गया कि सोरठ देश में कोई किसी पर अन्याय और अनर्थ नहीं करता मैंने यहां निवास किया और अब यहां से कहीं जाने की इच्छा नहीं"।

राखनगार—अभी तक तुम्हारी कन्या के विवाह का सम्बन्ध कहीं जुड़ा है या नहीं ?

हड़मता—अभी तक तो मैंने इस विषय में विचार नहीं किया, कन्या सयानी होगई है यदि कोई कुम्हार योग्य मिल जाए तो मैं उसी के साथ इसका विवाह कर दूंगा, परन्तु आपत्ति यह है कि यहां के कुम्हारों में से अभी तक किसी ने मुझे अपने साथ नहीं मिलाया, मैं भी समय की प्रतीक्षा कर रहा हूं, जब समय आवेगा अपने आप इसका विवाह हो जायगा, कन्यायें भी कभी किसी की कुंवारी रही हैं, परमेश्वर ने प्रत्येक कन्या के लिये कोई न कोई वर उत्पन्न कर दिया है शास्त्र ऐसा ही कहते हैं, इसकी मुझे चिन्ता काहे की है।

राखनगार—परन्तु तुमने अभी अभी कहा था कि रानकदेवी अशुभ लग्न में जन्मी थी।

हड़मता—परन्तु मेरा इस पर विश्वास नहीं है, मैं रानक को भाग्यवती समझता हूं, जब से मेरे घर में आई है, यद्यपि दो बार मुझे स्थान छोड़ना पड़ा है, परन्तु घर भरा रहता है, किसी प्रकार का मुझे कष्ट नहीं है, और यहां मझोड़ी आने पर मेरी स्त्री के एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ है जिसे रानकदेवी दिन भर खिलाती रहती है।

राखनगार—इस का नाम "रानकदेवी" तुमने रखा है व पहले ही से यह रानक कहलाती है ?

हड़मती—यह नाम मैंने ही रखा, क्यों कि वह रन अर्थात गढ़े में मिली थी इस लिये इसका नाम रानक रख दिया।

राखनगार—देखना। जब तक मैं तुमको आज्ञा न दूं, इसका विवाह किसी के साथ न करना।

हड़मती—परन्तु सरकार यहां तो मुझे सुगमतासे आप का दर्शन मिल गया, जूनागढ़ के दर्बार में इस निर्धन कुम्हार को कौन प्रबन्ध करने देगा।

राखनगार—कल मैंने रानक देवी को एक अंगूठी दी है, जब तुमको अथवा उसे मुझे मिलने की इच्छा हो, तुम दरबारियों को इसे दिखा देना कोई रोक टोक न करेगा।

हड़मती—बहुत अच्छा, जो सरकार की आज्ञा।

राखनगार—अच्छा अब तुम जाओ, मैं जल्द जूनागढ़ जाकर तुम्हारी सुधि लूंगा।

हड़मती—सत्त बचन।

और प्रणाम करके वह अपने घर चला आया।

चतुर्थ परिच्छेद ।

भाग्य

कर्मन की गति न्यारी ।

हड़मती कुम्हार था, कुम्हारों का हिन्दुओं के अन्दर क्या आदर है, कुछ भी नहीं, निर्धन सबके सब सहन शील, नम्र स्वभाव और अपने आप में दबे हुए होते हैं, परंतु जिस प्रकार चूहों के अन्दर भी कभी २ ऐसे चूहे उत्पन्न हो जाते हैं, जो हाथ में पकड़ने वाले मनुष्यों को डरा देते हैं, और अपने आप को औरों से बढ़े चड़े सिद्ध करते हैं, उसी प्रकार यह हड़मती भी था। बिना प्रयोजन के न किसी से मिलता था और न किसी की लिप्सा करता था छल रहित सौम्य स्वभाव था, पहिले तो लोग उसे अभिमानी समझते थे, परन्तु जब थोड़े दिनों में पता लग गया कि यह मनुष्य धर्म परायण है, मझोड़ी के ब्राह्मण क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र सब ही उसका आदर करने लगे, धार्मिक जीवन, वास्तव में सुख, शान्ति आदर और निर्भयता का जीवन है, एक बार किसी विशेष नियम को तुम ग्रहण

मोहन लाल ... ने जयपुर सं १६४३ में पढ़ी

करलो, दृढ़ता के साथ उस पर स्थिर रहो आरम्भ में यदि कष्ट होता हो तो विचार न करो, थोड़े ही दिनों के पश्चात तुम को उसके द्वारा वह आनन्द प्राप्त होने लगेगा जो राजाओं के भी भाग्य में नहीं होता हड़मती इसी प्रकार के नियम पर चलने वाला था।

यह दिन को काम काज करता, संध्या समय प्रतिदिन एक साधु के सत्संग में जाता था, बैरागी ब्राह्मण था, रामानुज सम्प्रदाय का साधु था और क्यों कि यह सम्प्रदाय शठ कोप कञ्जर से चला है जो अत्यन्त नीच जाति का मनुष्य था, रामानुज ने भी गुरु की शिक्षा के आदर में मनुष्य मात्र पर उपकार करने की इच्छा से जो शुद्र वैष्णव हैं उनके साथ भी प्रेम करने की शिक्षा दी है इस भाव में रामानुज के "श्री" सम्प्रदाय ने हिन्दुओं के अन्दर जाति के विशेष भाग में बहुत लाभ पहुंचाया है बैरागी का नाम कृष्णदास था, उस दिन वह स्वयं कुम्हार के घर आया हड़मती ने उसको नमस्कार किया, बैठने के लिये आसन दिया, पुत्री (हड़मती की स्त्री) रानक और अड़ोस पड़ोस के अन्य स्त्री पुरुष सब उसके आने का समाचार पाकर वहां आए, और उस को प्रणाम करके उसके उपदेश सुनने के लिए बैठ गए।

हिन्दुओं में साधुओं का समुदाय बहुत ही पूजनीय है परन्तु शोक ? कदाचित् इनसे काम लिया जाता अथवा

हिन्दुसमाज इनको तनिक भी लाभकारी बना लेती तो जो काम दूसरे आचार्य्ये, व जाति के संशोधक वर्षों में करते हैं, और उनका फल कुछ नहीं निकलता, साधु उसे महीनों सप्ताहों, वरंच दिनों में कर दिखाते, यह देश और जाति का दुर्भाग्य है कि यह साधुसमाज लाभ के स्थान में घुन का कीड़ा बन गया है हड़मती ने कहा महाराज! आज रानकदेवी बहुत प्रसन्न है, राजा राखनगार ने इसे चार रुपये दिये हैं और एक स्वर्ण की अंगूठी प्रदान की है, रानक ने इन रुपयों में से आप के लिये कई आने की मिठाई खरीदी है।

कृष्णदास हंसा और कहने लगा "क्यों न हो! रानक भाग्यवती कन्या है, इसके भाग्य अच्छे हैं।"

हड़मती—महाराज! आप के कथन से मुझे भी विश्वास होता है।

कृष्णदास—नहीं, नहीं, देखो तो सही, ईश्वर ने इस को कैसा सौम्य व सुन्दर रूप दिया है, रूप, बल, विद्या, और अच्छी स्त्री यह सब भाग्य से ही मिलते हैं यह सत्य है कि कभी २ प्रत्यक्ष रूप के अन्दर धोखा होजाता है, और सौन्दर्य्ये इन्द्रायण के फल की तरह सिद्ध होता है परन्तु सदैव ऐसा नहीं होता, अधिकतर सुन्दर रूप वाले! सुशील ही हुआ करते हैं।

हड़मती—सत्तवचन।

कृष्णदास—रानक को कौन कुम्हार की पुत्री कहेगा

यह तो किसी राजा की राजकन्या दिखाई देती है।

हड़मती—सत्तवचन।

कृष्णदास—फिर देखो, किस प्रकार, बैठती, उठती, बोलती, है न किसी पर क्रोध करती है न कलह न क्लेश यह सब बड़प्पन की बातें हैं। मैंने तो जब पहिली बार इसको देखा था तब ही समझ गया था कि यह बड़े भाग्य वाली है और किसी उच्च घराने में जाएगी। रानकदेवी को अन्तिम बचन सुनकर लज्जा आ गई।

हड़मती—क्या करूं महाराज! मेरी कन्या सयानी हो गई, अभी तक इसके लिये कोई योग्य वर नहीं मिला, मेरी स्त्री को तो अब अन्न जल भी नहीं भाता, शास्त्र भी ऐसा कहते हैं, जिसके घर में कन्या सयानी हो जाती है उसको पाप लगता है।

कृष्णदास—चिन्ता न करो, भगवान आप ही इसका प्रबन्ध करेंगे अभी तक इसके भाग्य सोये हुए हैं, परन्तु मैं तुम से यह कहे देता हूं कि रानक कुम्हार के घर जाने के योग्य नहीं है।

हड़मती—भगवन्! आप ने कई बार, भाग्य की बात-कही है, यह भाग्य क्या पदार्थ है, लोग तो कहते हैं कि मनुष्य इस जन्म में भले बुरे जो कर्म करता है दूसरे जन्म में उन्हीं कर्मों का फल भाग्य अथवा प्रारब्ध होता है और उसी के अनुकूल फल मिलता है, क्या यह सत्य है?

कृष्णदास—सत्य है और सत्य नहीं भी है।

हड़मती—कैसे।

कृष्णदास—कर्मों के संस्कार से प्रारब्ध बनता है इसी प्रारब्ध के भोग को बहुधा मनुष्य अपनी भूल से सदैव भाग्य कह देते हैं, भाग्य वास्तव में प्रारब्ध से भिन्न वस्तु है, प्रारब्ध केवल उस कर्म के संस्कार को कहते हैं जो वर्तमान जीवन से पहले हो, और भाग्य इस प्रारब्ध से भी पूर्व तर पदार्थ है, प्रारब्ध का सम्बन्ध, परिश्रम, पुरुषार्थ और यत्न से है, जो जन इस जन्म में शुभ कर्म करता है और जिनका फल अभी नहीं मिलता वरञ्च संचय होता जाता है उन्हीं का फल दूसरे जन्म में भोगना होगा, यह प्रारब्ध परन्तु भाग्य यह नहीं है।

हड़मती—प्रभो! हमारे वैष्णव सम्प्रदाय में प्रारब्ध ही को दैव माना गया है।

कृष्णदास—सुनो! साधारणतया तो सब ही प्रारब्ध को भाग्य मान रहे हैं, परन्तु भाग्य कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो प्रारब्ध से ऊंची है।

हड़मती—तो फिर यह भाग्य क्या वस्तु है?

कृष्णदास—भाग्य कहते हैं, विधाता के लेख को, भाग नाम है अंश का, यह मानवी जीवन का वह मौलिक आधार है जिसकी धारा बहुत दूर से चली आ रही है और जिसका अंश आदि से लेकर अन्त तक अविच्छेद रूप से मिलता

रहा है, उदाहरण रूप से, जैसे तुम समझो कि ईश्वर के मन में सृष्टि की उत्पत्ति करने का संकल्प उत्पन्न हुआ यह संकल्प एक प्रकार का भण्डार अथवा प्रकृति है, जिसका भाग अणु है अणु जड़ वा चेतन प्रत्येक प्रकार की सृष्टि को मिला है, क्यों कि यह जो कुछ तुमको दृष्टि गोचर हो रहा है वह ब्रह्म के संकल्प का ही प्रकाश है, जो विभक्त हुए पदार्थों के रूप में सर्वत्र बिखरा हुआ है प्रतीत होता है, और यद्यपि सब भिन्न भिन्न दिखाई दे रहे हैं परन्तु सबके सब एक ही बंधन से बंधे हुए हैं और वह बंधन व सम्बन्ध ही भाग्य है, जिसने सब को अपना २ व्यक्ति गत नाम देकर एक में ओत प्रोत कर रखा है।

हड़मति—विषय केवल कठिन ही नहीं वरञ्च कठिनतर हो गया, क्या किसी उदाहरण से यह स्पष्ट और सरल नहीं हो सक्ता ?

कृष्णदास—क्यों नहीं, परन्तु उदाहरण में सम्पूर्ण और वास्तविक प्रत्येक अंश नहीं घट सकता यह दोष है, तथापि मैं तुमको उदाहरण से समझाने का यत्न करूंगा, मान लो कि तुम्हारे पास कई मन अनाज है, उसको तुमने दो चार वा दस घड़ों वा मटकों में बांट कर रख छोड़ा है यह अनाज घड़ों की दृष्टि से बांटा गया है और उन घड़ों के भाग्य हैं ब्रह्म के संकल्प का भी ठीक यही अवस्था है, यह उसका संकल्प ही है जो सर्वत्र व्यापक होकर जड़ और

चेतन भास रहा है, और असीम होकर भी भिन्न सीमित मर्य्यादित व एक देशीय होकर भिन्न रूपों में काम कर रहा है इसी विभक्त हुए संकल्प के अनन्त भागों को वास्तव में भाग्य कहा जाता है।

हड़मती—इस में न्यूनाधिक हो सक्ता है कि नहीं ?

कृष्णदास—नहीं जैसा है वह है वह वैसा रहेगा, भाग्य मे न्यूनाधिकता कैसी ?

हड़मती—फिर तो कर्म कुछ नहीं रहा, और न कर्म करने की कोई आवश्यकता ही शेष रही, जो जैसा है वैसा ही रहेगा, उसमें परिवर्तन नहीं आवेगा।

कृष्णदास—आपत्ति तो यह है कि तुम कर्म को भाग्य समझ रहे हो, मैंने तुम को बता दिया है कि कर्म और वस्तु है, कर्म में तो न्यूनाधिक होता रहता है, मनुष्य परिश्रम करने से अपनी अवस्था को बदल लेता है, निर्धन धनवान हो जाता है, निर्बल बलवान् हो जाता है, यह तो सम्भव है, परन्तु जिस ब्रह्म के संकल्प को हम भाग्य कर रहे हैं वह बढ़ सक्ता है, न घट सक्ता है, वह जैसा है, उस समय तक वैसा ही रहेगा, जब तक ईश्वर फिर अपने संकल्प को समेट नहीं लेगा।

हड़मती बुद्धिमान था सिन्धु देश में उसने कुछ संस्कृत और फारसी भी पढ़ी थी, परन्तु अब उसने साधु को भाग्य के विषय से कर्म और परिश्रम को विभिन्न करते हुए देखा

वह आश्चर्य सा रह गया, वह आदि से सुनता चला आ रहा था कि दैव कभी पलटती नहीं और न उपाय उसे बदल सक्ता है, और साथ ही सब पण्डित वा उपदेष्टा लोक अंधेरे में, अपनी अवस्था को बदलने का उपदेश सुनाते आ रहे थे स्पष्टतया कोई नहीं कहता था, यह विषय ऐसा था कि जिस पर अब भी बात चीत करने के लिये अवसर प्राप्त था, आज कृष्णदास की संक्षिप्त सी वक्तृता ने उसके संशय को काट दिया और फिर उसने कोई प्रश्न न किया क्योंकि वह योग्य होने के कारण तत्व को समझ चुका था, और साधु से पूछा महाराज ! रानकदेवी के सम्बन्ध में मैं कैसे निश्चय करलूं कि सौभाग्यवती है ?

कृष्णदास—सुनो हड़मती ! प्रत्येक में रूप रंग देख मनुष्य अनुमान के घोड़े दौड़ाया करता है, जो कुछ अनुमान व सामुद्रिक आदि की विद्या तुम देखते हो सब मनुष्य के अनुमान व आनुमानिक विद्या के अनुभव का परिणाम है, हम ईश्वर के भक्त हैं ऐसी बातों की ओर अधिक दृष्टि नहीं देते, जो होगा उसी की इच्छा से होगा अधिक सोच विचार व्यर्थ है।

ईश्वर की भक्ति व उपासना करो, अपने कर्म उसकी भेंट चढ़ाते रहो, इस से अधिक हम को जानने वा चाहने की इच्छा नहीं है।

हड़मती—सत बचन।

कृष्णदास--मैंने रानकदेवी के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, लक्षणों को देख कर कहा है वह अतीव सुन्दरी है, सुशीला है और छल छिद्र से रहित भोली है ऐसा मनुष्य जब रहेगा अच्छी अवस्था में रहेगा, हां यह दूसरी बात है कि वह अच्छी अवस्था में कैसी होगी ?

चमकते हुए मोती को गंदे पानी के घड़े में कोई नहीं रख सकता, और न मलीन पदार्थ को चांदी और सोने के कलशों में रखते हैं मनुष्य में यह स्वाभाविक गुण है कि जो वस्तु जिस के योग्य हो उस को वहां और उसी में रखने का प्रबन्ध कर दिया जावे, यह स्वाभाविक गुण मनुष्य में है, वही भाव प्रकृति में भी है केवल इसी भाव से मैंने यह बात कही थी।

हड़मती—सत वचन, परन्तु भगवन ! राखनगार ने चार रुपये और अंगूठी रानक को दी थी, आज मुझे बुला कर कहा कि विना उस की आज्ञा के रानक का विवाह न करना इस में राजा की क्या भावना हो सकती है ?

कृष्णदास—यह तो वही बात हुई जो मैंने अभी तुम से कही थी, अच्छी वस्तु अच्छे के पास और बुरी वस्तु बुरे के पास जाती है, कौन जाने कन्या को देख कर राजा के मन में कैसे २ भाव उत्पन्न हुए हों वह धर्म्मात्मा है, शास्त्र की आज्ञा के अनुसार चलता है, बुराई को तो इस से कभी आशा नहीं हो सकती इस में तो तुम निःशङ्क रहो, हां उसका

विचार क्या है ? यह कहा नहीं जा सकता राजाओं का हृदय समुद्र की न्याई गम्भीर होता है; उस के अन्दर कैसे २ भाव की तरंगें उठती हैं इस का अनुमान कोई नहीं लगा सकता, समय पर यह रहस्य भी खुल जायेगा, इस में चिंतित होने की कौनसी बात है।

साधू अधिक समय तक वहां न ठहर सका, हड़मती से आज्ञा ली उस ने नमस्कार की और वहां से विदा होकर अपने आश्रम पर आया।

पंचम परिच्छेद।

विचार

विचार कीजिए तो अच्छों से

रा खनगार ने पहले दिन दस पन्द्रह मिनट तक रानकदेवी से एकान्त में बात चीत की थी दूसरे दिन हड़मती उसके पिता से वार्तालाप किया दरबारियों को आश्चर्य हुआ, वे उड़ती चिड़िया पहिचानते थे, समझ गए कि कोई न कोई भेद अवश्य है और नित्य के छल और कपट का अभ्यास उन को इतना

तीक्ष्ण बुद्धि बना देता है कि तुरन्त बात को समझ जाते हैं और एक एक दो होंगे अथवा ग्यारह होंगे इस का ज्ञान तो शाला की अधम श्रेणी का बालक भी रखता है, दरबारी कैसे अपरिचित रह सकते हैं ? पहिले दिन की घटना तो साधारण जान पड़ी, राखनगार का स्वभाव था कि वह अपनी दीन से दीन प्रजातक को एकान्त में मिला करता था परन्तु उसका मिलना दरबारी जनों के द्वारा हुआ करता था, इस अवसर पर दूसरे दिन की घटना ने उन्हें चौकन्ना कर दिया, वे सोचने लगे कि "हड़मती स्वयम् राजा को कैसे मिलते आया, उसे साहस कैसे हुआ, और राजा ने बिना किसी दरबारी के पूछे उसे अन्दर स्थान कैसे दिया ? यह भाव थे जो जन के हृदय समुद्र को अपनी उत्तुङ्ग तरंगों से शोभित करने लगे।

दौरे में राखनगार के साथ उसके दो भाञ्जे रहा करते थे जो गुजरात के इतिहास में अपने बुरे कर्म्म के कारण कलङ्क रूप से प्रसिद्ध हैं, इन का नाम वशील और दशील था इनकी माता राखनगार की भगिनी थी, जब यह अभी बालक थे, पाटन देश के सोलङ्की राजा सिद्ध राज जयसिंह ने छल से इनका देश छीन लिया। निःसहाय अवस्था में इन की माता भाई के घर आई, और इन दोनों बालकों का पालन पोषण जूना गढ़ में ही हुआ, राखनगार इन पर बड़ा दयालु था इनकी माता का नाम मनीलदेवी था।

वशील और दशील को आश्चर्य्य था, उन्होंने गुप्त रूप से पता लेने का यत्न भी किया, परन्तु किसी बात का पता न मिला, और पता कैसे मिलता राजा ने हड़मती को केवल इतनी आज्ञा दी थी "कि उसके पूछे बिना रानक का विवाह न करना" उसके क्या अर्थ हो सकते थे, इनके मनको शान्ति कहां, दूसरे ही दिन सन्ध्या समय जब यह राखनगार के पास बैठे और उसने पूछा "मभयोड़ो में तुमने क्या अपूर्व और आश्चर्य्यजनक बात देखी" इनको अवसर मिल गया और बातों बातों में ही हड़मती और रानक का प्रकरण छेड़ दिया।

वशील—महाराज और क्या कहूं, जो वस्तु यहां दिखाई दी, वह कहीं भी नहीं देखी गई, क्यों दशील ठीक है-ना!

दशील—निस्सन्देह, ऐसे ही है!

राखनगार हंसा, ये दोनों भाई ऐसी बातें करते थे, वशील जब कुछ वाणी से निकालता दशील से तत्काल साक्षी मांगता और वह उस का समर्थन करता दोनों भाई एक साथ जन्मे थे, चतुर थे, और एक दूसरे के अनुरूप थे।

राखनगार—परन्तु वह सच्ची बात क्या है?

वशील—अन्नदाता! गढ़े में कमल का जन्म हुआ, और कौए के शिर पर मोर पंख की कलगी लगी है, क्यं दशील! तुम्हारा क्या विचार है?

दशील—जो तुम्हारी सम्मति वही मेरी भी है, मैं भी ऐसा ही समझता हूं।

राखनगार (मुस्कराते हुए) परन्तु मेरी समझ में अब तक नहीं आया कि तुमने क्या समझा।

वशील—मैंने वही समझा है जो और लोगों ने समझा है, क्यों दशील ठीक है या नहीं ?

दशील—इसमें क्या सन्देह है, बहुत ठीक।

राखनगार मुस्कराता रहा। यह तो राजाओं के दरबार में बिदूषक रहते थे उनका यही काम था, कि अनाप शनाप बातें करके राजा को हंसाते रहें।

वशील दशील चाहे विदूषक न कहलाएं।

राखनगार उन से अत्यन्त स्नेह का व्यवहार करता था, परन्तु स्वभाव से क्या किया जाए प्रकृति से विवश थे, उपहास के विना और उन को कुछ सूझता ही न था और राजा भी उनको इस से रोकता नहीं था।

राखनगार—दशील ! ठीक क्या है ?

दशील—श्रीमान् ! सब से अपूर्व दृश्य जो हमने यहां आकर देखा, वह यह है कि ब्रह्मा ने कुम्हार के घर की मट्टी से एक ऐसी अपूर्व मूर्ति घड़ी है, जो कदाचित् किसी मन्दिर में न दिखाई देगी, क्यों वशील ! तेरी क्या सम्मति है।

वशील—निस्सन्देह, सत्य है।

राखनगार समझ तो गया कि कुम्हार की मूर्ति से इन

का क्या अभिप्राय है परन्तु पूछने से ने रह सका।

राखनगार--क्यों वशील! ब्रह्मा, मूर्ति और मन्दिर से तुम्हारा क्या अभिप्राय है?

वशील--श्रीमान्! ब्रह्मा तो है हड़मती कुम्हार, मन्दिर है उस का घर, और मूर्ति है उस की कन्या रानक देवी, क्यों दशील! तुम क्या कहते हों?

दशील--सोलह आना ठीक।

राखनगार--निस्सन्देह रानक देवी अतीव सुन्दरी है, मैंने भी उसे अपने नेत्रों से देखा, और हड़मती भी मेरे पास आया था।

वशील--हां श्रीमान्! यह और भी उसके सुन्दर होने का प्रमाण है यदि वह इतनी रूपवती न होती तो श्रीमान् उस की ओर झुकने वाले कब थे, रूप में जादू है।

क्यों दशील! रूप जादू है कि नहीं है, तुम बोलते क्यों नहीं?

दशील--सच्चा जादू तो रूप ही है, कामरूप देश में रूपवती थी लूना चमारी और सोरठ देश में रूपवती कुम्हारी।

राखनगार इस कविता की बाणी पर खिलखिला कर हंस पड़ा क्या तुम्हारे विचार में कुम्हार की कन्या को इतना सुन्दर नहीं होना चाहिये था।

वशील--श्रीमान्! मनुष्य से पग पग पर भूल हुआ ही करती है, इसी प्रकार कभी ब्रह्मा भी भूल जाता है, यहां

उस ने भी धोखा खाया, क्यों दशील ! तुम क्या कहते हो ?

दशील—सत्य है, ब्रह्मा भी तो मनुष्यों का ही आदिम पिता है, इस में क्या झूठ है, वह अनेक समयों पर भूलता रहा है।

राखनगार मुस्कराया "ब्रह्मा ने कहां २ भूल की ?"

दशील—श्रीमान् ! सुनिये, मैं ब्रह्मा की भूल आपको सुनाऊं, उसने सूर्य को उष्ण ताप बना दिया, चन्द्रमा को रात्रि में उदय होने की आज्ञा दी, चन्दन के वृक्ष से सर्प लिपटाए, गुलाब के चारों ओर कंटक नियुक्त किये स्वर्ण को सुगन्धि रहित बनाया, पारे को चञ्चल बनाया, लक्ष्मी को नक्र, दुर्गा को सिंह और सरस्वती को हंस की सवारियां दी, विष्णु को सर्प की शय्या पर लिटाया, शिव को विभूति [भस्म] के ढेर पर सुलाया, बक को मछली खाना सिखाया कोइल को काला रूप प्रदान किया, एक बात हो तो कोई कहे, वह तो प्रतिदिन ऐसी भूलें करता रहता है क्यों वशील ! सत्य है वा झूठ ?

वशील—इस के सत्य होने में क्या सन्देह है ?

राखनगार—बहुत अच्छा! तुम को यह पसन्द नहीं है कि रानकदेवी कुम्हार के घर उत्पन्न होती।

वशील—पसन्द हो न हो, ब्रह्मा हम से पूछ कर तो कोई काम नहीं करता हम क्या कह सकते हैं, उसका काम है वह जाने, क्यों दशील !

दशील—सत्य है।

राखनगार—रानकदेवी का रूप सर्व्वाङ्ग पूर्ण है।

दशील—परन्तु श्रीमान्! रूप सर्व्वाङ्ग पूर्ण हुआ तो क्या है भाग्य तो पूर्ण नहीं कुम्हार की कुटीर, नीच जाति, कोई सामग्री नहीं, न विद्या न सभ्यता और इस पर कलगी यह कि स्त्री क्यों वशील! स्त्रियों के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या सम्मति है!

वशील—बहुत बुरी, स्त्री के बनाने में ब्रह्मा ने अत्यन्त भूल की उसमें अपना कुछ नहीं है प्रत्येक वस्तु औरों से मांगी हुई, चन्द्र से मुख, हरिण से नयन व्याघ्र से कटि, कपोल से ग्रीवा, कमलदण्डी से हस्त युगल, विद्युत से कटाक्ष, पुष्प से वर्ण, कोकिला से कण्ठस्वर कि बहुना स्त्री की सम्पूर्ण वस्तुएं दूसरों से दान ली हुई हैं इस लिये उसमें कोई भी तत्व नहीं तुम पहले यही देखो, कि जब कभी किसी स्त्री की आवश्यकता होती है वह दान रूप से मिलती है, शास्त्रों में इसका नाम कन्यादान लिखा है पता नहीं ब्रह्मा को इसके बनाने की आवश्यकता ही क्या थी यह तो इस संसार का असाध्य रोग है, जब देखो कैंची के समान इसकी बाणी फट फट चर चर चलती ही रहेगी, प्रत्येक वस्तु को पुरुष तालों में बन्द कर सकता है परन्तु स्त्री की जिह्वा को आज तक किसी ने नहीं ताला लगाया, कभी वह प्रसन्न है, कभी अप्रसन्न है, कभी अश्रु बहा रही है और

क्षण में उसको पोंछती भी दिखाई देती है और मुस्कराती भी जाती है, इसकी किसी बात पर विश्वास नहीं, ब्रह्मा ने स्त्री के बनाने में भारी भूल की, मेरी भी यही सम्मति है।

राखनगार ने अट्टहास किया "बहुत अच्छे, वशील! बहुत अच्छे" तुम तो अच्छे कवि निकले, कालीदास को भी अर्धचन्द्र दे दिया, स्त्री को तुम अनावश्यक समझते हो, परन्तु स्त्री न होती तो यह संसार किस प्रकार उत्पन्न होता ? इस लिये ब्रह्मा ने भूल नहीं की तुम्हारी बुद्धि में भूल है।

दशील—नहीं प्रभो! मेरा भाई सच कह रहा है, स्त्री तत्व से शून्य है नर वास्तविक है, नर सच्चा और नारी झूठी, नर खरा और नारी खोटी है, खोटी वस्तु को कोई नहीं रखना चाहता यह छल और कपट है, विपत्ति का मन्दिर है, परमेश्वर इस राक्षसी से रक्षा करे, कलह की मूल, बुराई का कारण, शत्रुता और वैमनस्य का आधार मुझे तो इस स्त्री में एक भी गुण दिखाई नहीं देता क्यों वशील! मेरा भाव सत्य है वा नहीं ?

वशील—पूरे सोलह आना सत्य, बावन तोला पाव रत्ती सत्य, सौ में सौ नम्बर, इस स्त्री के कारण स्वर्ण की लङ्का भस्मीभूत हो गई इस स्त्री ने महाभारत करा कर सम्पूर्ण राजपरिवारों को नष्ट कर दिया।

चन्द्रमा कहने को देवता है, परन्तु उसके गुरू बृहस्पति की स्त्री तारा ने उसको कुमार्ग में डाल दिया, स्वयं

पति का गृहत्याग कर चन्द्रमा के गृह में निवास करने लगी इन्द्र को अहिल्या ने इस प्रकार मोहलिया कि उसे छली और मायावी बनना पड़ा, इसी स्त्री ने शृंगी ऋषि का तप भंग कर दिया इसो ने विश्वमित्र ऋषि को मेनका के रूप में छल लिया, कहां तक कहूं यह वह पिशाच है जिस के पास एक दो नहीं, वरंच पुरुषों के मारने के अर्थ सहस्त्रों अमोघ शस्त्र हैं, यह रोकर मारती है, हंस कर मारती है नयनों को कटीली दृष्टि से, भवों को तिरछा बना कर बोल कर, चुप रह कर, चल्ली कर, ग्रीवा हिला कर, संकेत की अंगुली दिखा कर, कितने गिनूं यह सब विधियों से पुरुष को घायल करती हुई उसको छननी कर देती है।

रोय गाय हंस खेल कर, हरत सबन के प्राण ।
कहें कबीर इस घात को, समझें सन्त सुजान ॥

और महाराज! जो आप कहते हैं कि स्त्री न होती तो यह रचना कैसे होती उसके अर्थ में कहता हूँ, कि प्रथम तो इस संसार के रचने की आवश्यकता ही क्या थी, यह स्वयं ब्रह्मा को भूल थी, और जब ब्रह्मा स्त्री के बनाने में समर्थ था तो क्या किसी और विधि से उत्पत्ति का क्रम नहीं चला सकता था निस्सन्देह ! यह उसकी भूल ही भूल है, स्त्री का बनाना ब्रह्मा की भारी भूल है।

राखन गार ने देखा कि यदि वह कुछ और कहता है

ल तो वशील, दशील पढ़े लिखे मनुष्य हैं, यह बात का बतंगड़ बनाएंगे, जिससे कल कुछ नहीं होगा इस लिये उसने अपने स्वभाव के अनुकूल मुस्करा कर कहा "तुम दोनों बड़े पण्डित हो, परन्तु मैं एक बात पूछता हूं उसका उत्तर दो।

वशील—आज्ञा कीजिये ! हमारे हृदय, बाणी, हाथ, पाँवों, सब ही तो आप की सेवा के लिये हैं, क्यों दशील ! हैं कि नहीं।

दशील—इसमें क्या सन्देह है, हमारा जीवन ही महाराज का प्रदान किया हुआ है, एड़ी से लेकर चोटी तक महाराज ही का तो लवण भरा हुआ है।

राखनगार—तुम ऐसे चटुल वाक्य मत कहो, तुम मेरे भाञ्जे हो, तुम्हारे मुख से ऐसे बचन शोभा नहीं पाते, ऐसी बात चीत का परित्याग करो, अब यह बताओ कि यदि किसी क्षत्रिय को रानक देवी विवाह दी जाए तो उस में कोई दोष तो नहीं है ?

दशील—नहीं, शास्त्र कहते हैं, धन, विद्या और कन्या यह तीन रत्न हैं, यह जहां से हाथ लगें, यहाँ तक कि चण्डाल के घर में भी हों तो राजा उनको ग्रहण कर सका है, इस में कोई भी दोष नहीं है, इस के अतिरिक्त उच्च जाति वाले नीच जाति की कन्याओं को सदा से ब्याहते आये हैं, यह नयी बात नहीं है, क्यों वशील ! क्या मैं भूल में हूं ?

वशील—नहीं भूल नहीं वास्तव में ऐसा ही है,

बाणासुर राक्षस की पुत्री को कृष्ण के पुत्र अनिरुद्ध ने विवाह लिया था, जाम्बवती जो जाम्बन्त ऋषि की कन्या थी स्वयं कृष्ण ने ब्याही थो नाग कन्या सुलोचना को इन्द्रजीत मेघनाद ने, देव कन्या शकुन्तला को दुष्यन्त ने ब्याह लिया था, और सुनिये, यूनान देश की राजकुमारी मगध देश के राजा के घर आई, नौशेरवां की पौत्री मेवाड़ वंश में ब्याही गई, एक दो नहीं यहां सैंकड़ों उदाहरण विद्यमान हैं, मनु महाराज ऐसी आज्ञा देते हैं, महर्षि याज्ञवल्क्य की भी यही सम्मति है नारद और पराशर स्मृतियां भी इस के विरुद्ध नहीं हैं, परन्तु यह नहीं पता कि महाराज ने किस को इस रूपवती के हाथ के योग्य समझा है।

रत्नगार—कल यहां से प्रस्थान किया जाएगा, जूना गढ़ पहुंच कर इस विषय पर विचार किया जाएगा।

छटा परिच्छेद ।

स्त्री ।

स्त्री की पहिचान करना सहज नहीं ।

पाटन देश का राजा सिद्ध राज जय सिंह सोलङ्की अपने समय का बहुत बड़ा वीर, साहसी और मनस्वी राजा हुआ है, सम्पूर्ण गुजरात उस से भयभीत था और बहुत से छोटे २ राजे उसे कर देते थे उस का नाम गुर्जरेश्वर अर्थात गुर्जर देश का राजा था सिद्ध राज में बहुत से गुण थे, क्योंकि जब तक किसी के अन्दर गुण विद्यमान न हों तब तक प्रकृति उसे उन्नति और ऐश्वर्य का अवसर नहीं देती, यह कभी मत समझो कि हमारे शासक जन सब मूर्ख और असभ्य होते हैं, कोई न कोई उन में विशेष योग्यता रहती है, जिन के कारण वह जन समूह में शिरोमणि हो जाते हैं, हां यह सम्भव है, कि उन में कोई दोष भी हो, परन्तु यहांकौन मनुष्य ऐसा है, जो निर्दोष हो निर्दोष तो, उस परमेश्वर का नाम है, मनुष्य देह में आना ही दोष का प्रमाण है देह का नाम ही दोष है विकार है। निर्विकार ब्रह्म है

और वही इष्ट है, वही उद्देश्य है, देह देशीय है, और एक देशीय द्रव्य सदैव अधम होता है, शरीर में एक देशस्थ अवस्था में निर्दोषता और विकार शून्यता का अन्वेषण करना, जड़ता वा मूर्खता है, हम गुरु को दोष रहित उस के शरीर की दृष्टि से नहीं कहते परन्तु भाव रूपसे गुरु को सर्वभाव पूर्ण कहते हैं, इसी प्रकार हिन्दू-मूर्ति पूजा को करते हुए मूर्ति को विकार से रहित नहीं समझते थे वरं उस मूर्ति को पूर्ण तत्व का लक्ष्य समझ कर उस की पूजा करते थे, पत्थर को पूजा करते थे, पत्थर को मूर्ति, धातु की मूर्ति काष्ठ अथवा मट्टी की मूर्ति नाना विध प्रकृति के पाञ्च भौतिक विकार से बनी हुई मूर्ति विकार से रहित किस प्रकार हो सकती है, हां जिस भाव की दृष्टि से यह मूर्तियां पूजी जाती है वह भाव, वह आदर्श मय भाव दोष और विकार से सर्वथा रहित है, इसी कारण वेदों में प्रार्थनाएं भी की गई हैं "तू निर्दोष है हम को दोष से रहित कर, तूं प्रकाश स्वरूप है हमें अज्ञान रूप अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चल, तू ज्ञान स्वरूप है, हम को ज्ञान दे, तू सत्य है हमको असत्य अर्थात् अस्थिरता के रोग से मुक्त कर इत्यादि"।

सिद्ध राज में भी एक बुरा दोष था, वहविषयी वा कामी था, विषय वासना व इन्द्रिय लोलुपता इन्द्रियत्व का अत्यन्त कराल रूप है, परन्तु क्या किया जाए, यह प्रकृति मनुष्य में कई प्रकार से आजाती है पैत्रिक अधिकार के

नियमानुसार यह माता पिता से दयाभाग में मिलती है, संगति के नियमानुकूल यह मित्र बांधओं के साथ बैठने से जीवन का अङ्ग बन जाती है, कामना द्वारा यह हमारे शरीर के रोम रोम में प्रविष्ट हो जाती है ईश्वर सहायता दे तब इससे मुक्ति प्राप्त हो सकती है नहीं तो यह एक प्रकार का दोष है जो तमाम योग्यताओं पर परदा डाल देता है।

रात्रि का समय था, सिद्ध राज राजकीय कर्त्तव्यों से अवकाश पा महल में बैठा हुआ था, उस के समीप कई भाट, बन्दी, और विदूषक और कवि बैठे हुए थे, यह समय आमोद प्रमोद के लिये नियत था, दिन रात कौन मनुष्य काम में लगा रहता है कोई समय मनोरञ्जन का भी अवश्य चाहिये।

सिद्ध राज ने गवैयों का गाना सुना, विदूषकों के हास्य विलास और चुटकलों से मन बहलाया, इधर उधर की बातें भी बहुत हुईं, परन्तु मन प्रसन्न न हुआ, उस ने रण मल दसवन्धी से पूछा "कविराज! संसार में कौन सी वस्तु है जो मनुष्य के लिए सबसे अधिक आनन्द और सुख देने वाली है।

रणमल समझ गया, कि राजा की इच्छा क्या है, सेवक अपने स्वामी के मन की पुस्तक का सदैव स्वाध्याय किया करते हैं जिस प्रकार विद्यार्थी को अपनी पुस्तक के प्रत्येक पृष्ट के विषय का पता होता है, वैसे सेवकों की दृष्टि के सन्मुख उनके स्वामी के हृदय की पुस्तक सर्वदा खुली रहती है। और फिर राजा के दरबारियों का तो कहना ही क्या है, यह

एक दृष्टि देखने से उस के मन के भाव को ताड़ जाते हैं, रण मल ने कहा "जब विश्वकर्मा को यह कल्पना हुई कि मनुष्य के आमोद के लिये कोई साथी बनाये तो उस ने सम्पूर्ण पदार्थों के रसों को निकाल कर एक चटनी बनाई और वह मनुष्य के अर्पण की और वह आदि सृष्टि से आज तक केवल मनुष्यों के आमोद का साधन ही नहीं है, वरञ्च मनुष्य को वह इतनी प्रिय होगई है कि वह उसके अर्थ, माता पिता को, राजपाट को, लोक परलोक, सुख व शान्ति को और ईश्वर की भक्ति तक को छोड़ देता है परन्तु उसको नहीं छोड़ता।

सिद्ध राज हंसा "कविराज जी! वह कौनसी ऐसी वस्तु है?

रणमल—अन्न दाता! आप उसे जानते हो और फिर भी मुझ से पूछते हो।

सिद्धराज—नहीं, नहीं, कहो सुनूं तो सही, वह कौनसी ऐसी अपूर्व वस्तु है।

रणमल—महाराज! वह 'स्त्री' है।

सिद्ध राज ज़ोर से हंसा "अन्धे को अन्धेरे में बड़ी दूर की सूझी" "कविराज यहां तुम भूल में हो"।

रणमल—भगवन मैं सत्य कहता हूं, स्त्री जिस समय मुस्कराती हुई अपने होंट खोलती है; क्या आप नहीं देखते कि उसके दांत अनार के दाने के समान कैसे सुन्दर दिखाई

देते हैं, उस का मुखमण्डल समुद्र के सीप के समान होता है, जिसके अन्दर चमकते हुए मोती अपने स्वच्छ आभा को विकर्ण करते हैं यह दांत क्या हैं द्यौ लोक का सम्पूर्ण तेजोमय नक्षत्र मंडल, सूर्य्य, चन्द्र और तारा गण हैं समस्त सृष्टि इस दृष्टि से स्त्री के मुख में है और जब वह बोलने लगती है उसके कण्ठ से वह मधुर स्वर जो कर्ण कुहर से प्रवेश करके हृदय में पहुंचतो है वह साम वेद की श्रुति है, जो ज्योतिर्मय नक्षत्र मण्डल की गति से स्वयमेव ब्रह्माण्ड में गूंज जाती है, इसी से वायु की उत्पत्ति है जो हृदय की संकुचित कलि को खिला देती है, स्त्री के नयनों में अग्नि और विद्यत होती है जो अग्नि और इन्द्र देवता का नमूना है, स्त्री को तनिक आंख खोलने दीजिये, मनुष्य की निष्ठुरता, निर्दयता और जड़ प्रकृति निमेष मात्र में आर्द्र हुई वह निकलती है, इसी स्त्री का शरीर पृथ्वी मण्डल है जिस के अंक में संसार के दुखाए हुए मनुष्यों को विश्राम मिलता है, इस स्त्री को आप ने समझा क्या है, यहां यह लक्ष्मी का काम करती है, यह पुरुष को बुद्धि वा ज्ञान का पाठ पढ़ा कर ज्ञानवान बनाती है, यह पुरुष को अपने हाथ से भोजन खिला कर बलवान बनातो है, इस जगत में वह सरस्वती का रूप बन जाती है। यह पुरुष को साहस दे दे कर संसार के संग्राम क्षेत्र में युद्ध करने के योग्य बना देतो है निस्सन्देह यह पार्वती वा दुर्गा है, इसी कारण शास्त्रों ने, अन्नदा, बलदा

और बुद्धि की संज्ञा दी है, यह शक्ति है और यह शक्ति महान् बलवान शक्ति है कैसे सम्भव है कि पुरुष को स्त्री के संसर्ग से संताप के दूर करने की सामग्री न मिले, इस के मुख में अमृत है और यह केवल वचन विलास से ही अमृत पुरुष को जीवित कर देती है।

सिद्धराज फिर ज़ोर से हंसा। "वाह कविराज जी वाह! इस समय तो ऐसा प्रतीत होता है मानो तुम्हारी जिह्वा पर सरस्वती बोल रही है।

रणमल—क्यों नहीं, स्त्री को मैंने अभी सरस्वती कहा है, यदि आवाहन मन्त्रों के उच्चारण करने से देवता यज्ञ मण्डप में आ जाते हैं, तो कैसे सम्भव है कि मैं सरस्वती के रूप वाली स्त्री का ध्यान करूं और मेरे हृदय और जिह्वा उस के प्रभाव से शून्य रहें।

सिद्धराज—तुम सच्चे स्त्री भक्त हो।

रणमल—और संसार में कौन पुरुष है जो स्त्री का भक्त नहीं है, ईश्वर भक्त तो मुझे यहां एक भी दिखाई नहीं देता, यहां सब ही स्त्री भक्त बने हुए हैं, क्या आप स्त्री भक्त नहीं हैं।

सिद्धराज क्षण मात्र के लिये चुप हो गया, फिर विचार पूर्वक उत्तर दिया "नहीं कविराज जी! मैं स्त्री भक्त नहीं हूं, मुझ में स्त्री भक्ति नहीं आई, मैं तुम से सत्य कहता हूं इस में तनिक सी भी असत्य की मिलावट नहीं।

रणमल—मैं आप का विश्वास करता हूं।

सिद्धराज हंसा "फिर तो तुम्हारा कथन असत्य हुआ, तुम ने अभी कहा था कि संसार में सभी जन स्त्री भक्त होते हैं, और मैं ऐसा नहीं हूं"।

रणमल—यदि ऐसी अवस्था है, तो मैं कहूंगा कि आपने किसी स्त्री का अभी तक दर्शन नहीं किया।

सिद्धराज—यह और भी आश्चर्य और अपूर्व बात है, मेरे महलों में सैंकड़ों स्त्रियां हैं और तुम कहते हो मैंने एक भी स्त्री नहीं देखी।

रणमल—मैं झूठ नहीं कहता हूं, यदि एक स्त्री भी आप को मिली होतो तो आप ऐसा कभी न कहते, जिनको आप ने देखा है वे स्त्रियाँ हैं, परन्तु वे आप की अनुकूल प्रकृति की स्त्रियां नहीं हैं, जब तक वास्तव स्त्री हाथ न आए तब किसी को जीवन का आनन्द भी नहीं मिलता और न स्त्री के गौरव की प्रतिष्ठा मन में बैठती है।

सिद्धराज—वास्तव स्त्री की क्या निशानी हैं।

रणमल—सुनिये महाराज! कोका पण्डित ने अपने शास्त्र में पांच प्रकार की स्त्रियां बनाई हैं, पद्मनी, चित्रनी, शङ्खनी, हस्थनी, और डङ्किनी, इन में सर्वोत्तम पद्मनी स्त्री है और वही वास्तव में स्त्री है, शेष सब उस से हीन श्रेणी की हैं।

सिद्धराज—इन में से एक एक का गुण कहो जिससे

मैं समझूं कि कदाचित् कोई वास्तव स्त्री मैंने देखो वा नहीं।

रणमल—पद्मनी के मुख का वर्ण कमल की न्याईं खिला हुआ होता है उस के वर्ण में कभी परिवर्तन नहीं आता, विम्बा धरी, मदिराक्षी, सौरभाङ्गी, निश्छला, पति-परायणा, निर्भया पर पुरुषानपेक्ष बुद्धि, और वाह्य अलंकार की उपेक्षा रखने वाली, इस प्रकार की स्त्री में एक प्रकार का आनन्द होता है, जो दिव्य लोक से अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकता इस प्रकार की स्त्रियां सती होती हैं जो मृतपति की देह के साथ ही चिता में बैठ कर भस्मसात् हो जाती हैं, चित्रनी इस से निचली श्रेणी की होती है, वह भी रूपवती होती है, परन्तु समय समय पर उसके मुख का वर्ण बदलता रहता है, ओष्ठ इसके भी पतले होते हैं, यह अलंकार और भूषणों की प्यारी है, यह प्रायः नेत्र के विकार ओष्ठ की फड़क और हाथ की अंगुलीयों के संकेत से बात चीत करती है, इस की प्रकृति तभी तक दृढ़ और स्थिर रहती है जब तक कि लज्जा से विवश रहती है, इसके शिरके केशों से सुगन्धि नहीं निकलती हां यह सुगन्धित इतर और फुलेल में वसी रहना चाहती है। तीसरे प्रकार की स्त्री शंखिनी है, इस का मुख शंख के समान खुला हुआ वा बंद और इसी प्रकार की स्वर उस के मुख से निकलती है प्रायः यह सुनने में मधुर होती है परन्तु उस में विगुणता छुपी रहती है इसका रूप कभी २ बहुत ही सुन्दर हो जाता है,

परन्तु इस का मन अत्यन्त चंचल होता है यह धर्म कर्म को तुच्छ समझती है, जैसा समागम मिला उसके अनुकूल हो गई, संगीत को बहुत प्यारी होती है, और इसी प्रकार मनुष्यों को पसन्द करती है, यह मायाविनी होती है, माता पिता के साथ कभी सत्य और हित का व्यवहार नहीं करती प्रत्युत इस प्रकार का वेश बनाए रखती है कि वह इस को सर्वथा बाला या भोली समझते रहते हैं, और यह किसी को छलने में बुराई नहीं समझती।

चतुर्थ प्रकार की स्त्री हस्तिनी है (यथा नाम तथा गुणः) जिसके होंठ मोटे होते हैं, प्रत्यक्ष में उद्दण्ड प्रकृति स्वार्थ परायणा इसका कोई नियम नहीं होता, सम्बन्धियों से द्रोह करने वाली प्रायः इसके भ्रूयुग मिले हुए होते हैं, उदर बाहर की ओर निकला हुआ, हाथ पाओं कुचैल पति को अंकुश रूप लोह मय हाथों से वश में रखने वाली, रुपया भूषण और वस्त्र आदि सांसारिक बातों को धार्मिक कर्तव्यों से भी अधिक आवश्यक समझने वाली, यह पति को इस प्रकार पंजे में दबोचे रखती है कि वह हिल नहीं सकता, पद्मनी का पति तो राजा होता है, चित्रनी का पति भी उपेक्षा कृत अधिक स्वतंत्र होता है, शंखनी के पति को बंधन और स्वतंत्रता दोनों ही सामान्य रूप से होते हैं, हस्तिनी का पति आयु भर जोरू का दास, स्त्री पूजक और स्त्री का क्रीत अनुचर बना रहता है, हस्तिनी प्रकृति की गम्भीर होती है,

पुरुप की मारधाड़ और कठोरताओं को सहन करती हुई भी उसको अपने जाल से निकलने नहीं देती, इसका स्वभाव अत्यन्त नीच होता है, छल और कपट इसका स्वाभाविक गुण हैं और धर्म कर्म सर्वथा दिखावे का होता है जिन में थोड़ा भी तत्व नहीं होता, पांचवीं स्त्री, डंकनी होती है, यह पद्मनी से सर्वथा प्रतिकूल होती है उस में यदि सुशीलता है तो इस में वे गुण हैं जो सुशीलता के पीछे लाठी लिये फिरती है।

सिद्धराज—तुम्हारी इस लम्बी चौड़ी वक्तृता का सारांश यह है कि पद्मनी स्त्री सब से उत्तम है, मैं इसको अब तक भ्रम समझता था, परन्तु सचमुच मुझे मानना पड़ता है कि मैंने आज तक ऐसी स्त्री नहीं देखी।

रणमल—यही कारण है कि आप को जीवन का वास्तव में सुख नहीं मिला है यदि पद्मनी किसी गृह में होती है तो न वह आमोद प्रमोद को ढूंढ़ता है और न उसे कभी व्याकुलता होती है, इस प्रकार की स्त्री बड़े भाग्य से प्राप्त होती है और यदि पुरुष भिक्षुक भी हो तो वह अपने आपको राजा से अधिक भाग्यवान समझता है।

सातवां परिच्छेद ।

पद्मनी

सुशील स्त्री पुरुष का सौभाग्य है ।

सिद्धराज—रणमल ! तुमने पद्मनी की अत्यन्त प्रशंसा की, परन्तु यह कैसे सम्भव है, कि प्रतिकूल दशा के होते हुए भी इस प्रकार की स्त्री सदैव सुख और आनन्द की कारण बनी रहे, ऐसी अवस्थाओं में तो स्त्री और भी विपति और बोझ रूप होती है।

रणमल—महाराज ! आप इस प्रकार की बात कर रहे हैं जिसका कोई भी उत्तर नहीं हो सकता, संसार स्वयं एक विस्मय और उद्विग्नता का स्थान है यहां राजा रंक कोई भी सच्चे अर्थों में सुखी नहीं रह सकता, हां जहां तक संसार के सम्पूर्ण सुखों का सम्बन्ध है उसकी प्राप्ति में पद्मनी सहायक होती है, सम्भव है कि वह बिपत्ति में कोई सहायता न कर सके परन्तु उसकी विद्यमानता अपने सुख कर प्रभाव से शून्य नहीं रहती।

सिद्धराज—किस प्रकार ?

रणमल—जिस प्रकार अन्धकार में दीपक प्रकाश का साधन बन जाता है, जिस प्रकार डूबने वाला एक लकड़ी का आश्रय पाकर बच जाता है, उसी प्रकार भाग्यवान नर कष्ट और विपत्ति में पद्मनी स्त्री के संसर्ग से अपने दुःख के भार को सदैव हलका पाता है।

सिद्धराज—मैं कैसे मानूं कि यह बात सत्य है, मान लो कि मैं राजा हूं, सोना, प्रजा, कोष, देश का प्रबन्ध, न्याय शासन आदि अनेक प्रकार की सहस्रों अनुकूल और प्रतिकूल दशाएं साथ रहती हैं, यदि पद्मनी स्त्री मिल गई तो सब बातों में उसका प्रभाव रहेगा, यह कैसे हो सकता है ?

रणमल—जैसे एक घड़े जल के अन्दर केवल दो चार गुलाब के इतर के विन्दु पड़ जाने से वह जल सुगन्धित हो जाता है, वैसे ही पद्मनी का संसर्ग मनुष्य के जीवन की प्रत्येक दशा में अपना प्रभाव दिखलाता है, पद्मनी स्त्री की प्रकृति अत्यन्त मृदु और स्निग्ध होती है मृदुल वस्तु बड़ी बलयुक्त होती है, वह पुरुष के हृदय को अपना सिंहासन बना लेती है, और भाव रूप से वहां बैठी हुई उसके प्रत्येक कार्य्य को उज्वल, मनोहर और शोभायमान बना देती है, पद्मनी का पति अधिक साहसी न्यायी, अधिक परिश्रमी, सदाचारी और सुखी हो सकता है क्यों कि शीलवती स्त्री का

भाव साहस देता हुआ प्रत्येक समय और प्रत्येक कार्य्य में उस को दिखाई पड़ता है।

सिद्धराज—तुम्हारे कथन से पाया जाता है कि पद्मनी अपने पति को एक मात्र अपनी ओर झुका लेती है, और तुरुप को उसके ध्यान के अतिरिक्त और कोई काम नहीं रहता, फिर तो पुरुष को स्त्री परायण बनाने वाली हो गई।

रणमल—यही तो बात है जिसको बहुत थोड़े मनुष्य समझते हैं पद्मनी का संसर्ग पुरुष के कंठ में चम्पा की माला है, सुगन्धि और शीतलता देती रहती है, परन्तु कंठ पर भार प्रतीत नहीं होती यह स्त्री ईर्षा व द्वेष से परे रहती है, और क्यों कि उस के हृदय में स्वाभाविकता मत्सर नहीं होता, उसका पति अपने विचारों में स्वतंत्र रहता है, उस के प्रेम में लीन रहता है, और उस का मन दूसरी ओर नहीं झुकता क्यों कि सुख वा आनन्द की सम्पूर्ण सामग्री की न्यूनता को पद्मनी का हृदय पूर्ण करता रहता है।

सिद्धराज—रणमल! तुम ऐसी बात इस समय कर रहे हो जो केवल कल्पना मात्र ही है, और कल्पना की दृष्टि से भव्य है, अथवा यह बात है कि तुमको स्त्री का अभी तक अनुभव नहीं हुआ है, मैंने आज तक ऐसी स्त्री नहीं देखी, मन में अभिलाषा रहती है कि राज्य कार्य्य के दुःखदाई व्यवहारों से अवकाश पाकर किसी स्निग्ध हृदय के पास बैठ कर दो घड़ी चिन्ता को दूर करूं, परन्तु आज तक तो मुझे

ऐसा अवसर और स्निग्ध हृदय नहीं मिला भविष्य को ईश्वर जाने।

रणमल—तभी तो आप को मेरे कथन के सत्य होने में सन्देह है, यदि आप ने कभी अपने दरबारी अथवा सेवक के पास भी ऐसी स्त्री देखी होती तो भूल कर भी ऐसी शंका न करते।

पद्मनी

सिद्धराज—क्या साधारण जनों को भी पद्मनी स्त्री मिल जाती है?

रणमल—क्यों नहीं, वरंच ऐसी स्त्रियों का तो जन्म भी बहुधा प्रायः निर्धन मनुष्यों के घर में होता है, परमेश्वर की दया केवल राजा और धनिक मनुष्यों तक ही नहीं, सब पर समान रूप से है।

सिद्धराज—रणमल! सत्य कहना, तुम ने कभी ऐसी स्त्री अपनी दृष्टि से भी देखी है अथवा कथनमात्र में ही आई है?

रणमल—हां श्रीमान्! मैंने देखी है, पद्मनी स्त्री कोई बनावटी कथा तो नहीं है, सचमुच वह है, हां क्यों कि वह नीलाम की वस्तु नहीं इस लिये उस पर सामान्य लोक की दृष्टि नहीं पड़ती और वह जिसके अर्थ ब्रह्मा ने बनाई है, उसी के जीवन के आनन्द का कारण बनती है।

सिद्धराज—यदि तुम ने देखी है तो मुझे भी दिखाओ और कोई ऐसा उपाय करो कि पद्मनी स्त्री मेरे महल में आ जाए।

रणमल दो चार क्षणों के लिये चुप रहा, उसकी स्त्री स्वयं सदाचारिणी और पतिव्रता थी, इसके अतिरिक्त मनुष्यों को इन बातों में बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं, कौन जाने किस का स्वभाव किस प्रकार का हो उसने उत्तर दिया, भगवन्! दिखाने को तो मैं दिखा दूंगा, परन्तु आप को विश्वास कैसे आएगा, सम्भव है आप के मन में परीक्षा लेने का भाव उत्पन्न हो और यह परीक्षा विपत्ति के रूप में बदल जाए।

रणमल—यदि ऐसा भाव है तो फिर किसी कुँवारी पद्मनी कन्या का अनुसन्धान करो, क्या तुमने ऐसी कन्या देखी है?

रणमल—हां, भगवन्! देखी है।

सिद्धराज—कहां देखी है?

रणमल—इसी गुजरात के सोरठ प्रांत में मझयोड़ी नाम का एक गांव है, यात्रा करते मेरा वहां से गमन हुआ, एक कुम्हार वहां रहता है, उसकी कन्या पद्मनी है।

सिद्धराज—कुम्हार के घर पद्मनी का जन्म हो, यह आश्चर्य का विषय है।

रणमल—इस में आश्चर्य की बात कौन सी है, परमात्मा जो चाहे सो करे, यदि सर्प के सिर में मणि, और गज के मस्तक में मोती, और मेंढ़क के सिर में जहरमोरा उत्पन्न होता है और हो सकता है तो किसी अधम मनुष्य के घर में पद्मनी का जन्म होना क्या आश्चर्य की बात है, इस संसार

मनुष्य

में दो विरोधी भावों का होना सम्भव है, जब राक्षसों की वंश में प्रहलाद जैसा भक्त, बलि जैसा दानी और रावण जैसे पण्डित ने जन्म लिया तो बिचारे कुम्हार ने क्या अपराध किया कि उसके घर में पद्मनी का जन्म न हो, यह स्वयं भी बहुत सदाचारी और धर्मात्मा है।

सिद्धराज—तुम्हारा कथन तो सत्य है, परन्तु चारन का राजा और कुम्हार की कन्या से विवाह करे संसार क्या कहेगा ?

यह बात सुन कर रणमल के होठों पर दबी हुई मुस्कराहट के चिन्ह प्रगट हुए सिद्धराज की उस पर दृष्टि पड़ी, यह कांप गया, सिद्धराज बड़ा उग्र राजा था, उसने पूछा, तुम मुस्कराते क्यों हो ? सिद्धराज प्रत्युत्पन्न मीत था। उत्तर दिया—मुझे एक ओर तो उस कुम्हार की कन्या के भाग्यों पर हंसी आती है, दूसरे शास्त्रकारों पर, क्यों-कि वे लिख गये हैं कि द्विज शूद्रों की कन्याओं को जब चाहे विवाहले, परन्तु एक भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ऐसा नहीं है जो इस आज्ञा का पालन करता हो, मेरी हंसी का तीसरा कारण यह है कि राजा सब कुछ कर सकता है, समर्थ है, परन्तु उस को भी इस रत्न की प्राप्ति के लिये कितना कष्ट उठाना पड़ा और जाति पान्ति की भ्रान्ति मूलक रीति का आदर करना पड़ा है।

सिद्धराज—तुमने सत्य कहा है और तुम्हारा हंसना वास्तव में ठीक है राजा को संसार में स्वतंत्रता कहां है,

उसको अपने पुत्र और कन्याओं तक के विवाह में सामान्य जनों का मुख देखना पड़ता है, देश की हानि और लाभ, और मंत्रियों का सम्मति के आधीन चलना पड़ता है, इस विषय में तो साधारण स्थिति के मनुष्य मुझ से सहस्रगुणा अधिक स्वतंत्र हैं मैं इसको स्वीकार करता हूं परन्तु तुम्हारी सम्मति क्या है ?

रणमल—भगवन् ! मेरी सम्मति क्या है ? कुछ नहीं, जो आप आज्ञा देंगे मैं उसीका पालन करूंगा, जिस प्रकार मन इन्द्रियों से जो काम चाहे लेलेता है आप गुजरात देश के मन हैं, गुजरात शरीर है, और आपकी प्रजा जिसमें भार दसवन्धो बारूद आदि सभी मिश्रित हैं, हाथ पाओं और इन्द्रियां हैं आप आज्ञा दें वही करूं ॥

सिद्धराज—मैंने विचार कर लिया, तुम जाओ फिर दोबारा उस कन्या को देख आओ, यदि उसका विवाह नहीं हुआ है अथवा उस कुम्हार ने उसकी मंगनी अभी तक किसी के साथ नहीं की है, तो तुम उसे समझा बुझा कर मेरे साथ विवाह कर देने मे सहमत करलो, और जब वह अङ्गीकार करे, तब मैं स्वयं वेष बदल कर वहाँ चलूंगा और कन्या को कन्या के पिता के सहित पाटन नगर में लाऊंगा, सोरठ देश का राजा राखनगार है, जब तक कुम्हार स्वयं यहां न आजाए मैं विवाह के लिये उसे विवश न करूंगा, कौन जाने इसका परिणाम क्या हो, तुम जो चाहो अपने आप करो इस उलझन को सुलझाओ।

रणमल—सतवचन, जो आपकी आज्ञा।

आठवां परिच्छेद ।

यत्न ।

होगा भाग्य से होगा काम करना आवश्यक है ।

रणमल पाटन नगर से चल पड़ा, उसके साथ चार और भाट थे, जिनको लोग, लाल, भङ्गर चिच और उबल कहते थे, कई दिन के पश्चात् यह मझयोड़ी पहुंच किसी धर्मशाला में ठहरे, हड़मता यद्यपि जाति का कुम्हार था परन्तु दूसरे राजा की प्रजा था उस पर किसी प्रकार का बलात्कार नहीं किया जा सकता था भाटों ने परस्पर मंत्रणा की, वहां के सेठ कर्मचन्द टीकमचंद और साधु कृष्णदास को अपना सहायक बनाया सेठ की एक कोठी पाटन नगर में थी वह अनायास ही इनका साथी बन गया, कृष्णदास से हड़मती का प्रेम श्रद्धा थी, उसने भी समझा कि इनका साथ देने में कोई हानि नहीं है और सबने भली भान्ति हड़मती से मेल मिलाप कर लिया तो फिर सिद्धराज की इच्छा प्रकट करने का साहस हुआ।

मनुष्य के कोई कार्य्य सहसा नहीं होते, पहिले इच्छा होती है, इच्छा अपने साथ साधन और सामग्री लाती है,

साथी और सहायक मिल जाते हैं यदि इच्छा की नींव दृढ़ हो तो वह काम सिद्ध हो जाता है और उसमें यदि किसी कारण से निर्बलता है तो वह सफलता तक नहीं पहुंचती वरञ्च बुराई और विनाश का भी कारण बन जाती है, मनुष्य जो कार्य्य करना चाहे उसके आरम्भ करने से पूर्व विचार ले कि कदाचित इस कार्य्य की सिद्धि में कोई लज्जा, भय अथवा असत्य भाव तो नहीं है, केवल यही तीन बाते विचार करने के योग्य हैं, यही वास्तव में पाप और अपराध है जिनमें यह तीन दुर्भावनाएं न होंगी वही वास्तव में सिंह पुरुष है और जिसमें हय होगा, व मायावी, कपटी और विश्वासघाती होगा और उसका कार्य्य केवल उसके लिये ही नहीं वरञ्च औरों के अर्थ भी लज्जा और विस्मय का हेतु होगा।

पांच भाट सेठ और साधु को लिये हुए हड़मती के घर पहुंचे उसने उनका आदर सत्कार किया, बैठने के लिये आसन दिया।

अवसर जानकर साधु कृष्णदास ने कहा "हड़मती! तुम्हारी कन्या रानकदेवी सयानी होगई है, अब उसका विवाह कर दो"।

हड़मती—भगवन्! मुझे स्वयम् चिन्ता है, परन्तु क्या करूं, कोई वर नहीं मिला।

कृष्णदास—तुम को स्मरण होगा, मैंने कहा था, कि रानकदेवी बड़ी भाग्यवती है।

हड़मती—आप का कथन मुझे स्मरण है, और मैं आप के कथन पर विश्वास भी रखता हूं परन्तु ज्योतिषियों ने इस को दुर्भाग्या भी ठहराया है।

कृष्ण दास—वे ज्योतिषी कौन है, मैं भी तो सुनूं।

हड़मती चुप हो गया, मन में आया कि रानक का भेद प्रकट कर दे परन्तु संभल गया, बात टाल दी, बोला "मेरे देश के ज्योतिषी ने कहा था"।

कृष्ण दास— ज्योतिषियों की बातों को दूर कर दो, यह बताओ कि यदि कोई अच्छा वर मिले तो तुम अपनी कन्या का विवाह शीघ्र कर दोगे वा नहीं।

हड़मती—"अन्धा क्या चाहे दो आंखें" विवाह तो इस का अवश्य होगा कन्या माता पिता के घर कहां रही है, कन्या नदी, मेघ, मुक्ता हीरा आदि इन का जन्म कहीं होता है और वास कहीं और स्थान पर; शास्त्र ऐसा कथन करते हैं, इस को मेरे घर तोरहना ही नहीं है, परन्तु उतावली में नहीं करूंगा।

कृष्ण दास—तुम बुद्धिमान मनुष्य हो,तुम ने इस समय क्या अच्छी बात कही हैं जो किसी रसिक कवि के मुख से और भी भली जान पड़ती, हां सेठ कर्मचन्द को इस का अर्थ तो समझा दो।

हड़मती हंसा "महाराज! नदी पर्वत से निकलती है, पर्वत ही उस के माता पिता हैं, परन्तु वह पिता के कुल को त्याग करके सहस्रों कोस की यात्रा करती हुई अपने आप को

विस्तृत और गम्भीर सलिल से युक्त और बहुत सामग्री वाली बना कर समुद्र के हृदय में ऐसे समा जाती है कि फिर ढूंढने से भी उसका चिह्न नहीं मिलता, इसी प्रकार भगवन! कन्या माता पिता के गृहमें जन्म तो लेती है, परन्तु हाथ पांओं सम्भाल कर, दान यौतुक आदि भाग को लेकर, पति के गृह में चली जाती है, और वहां अपना पहला नाम और चिह्न मिटा देती है, कोई उस का नाम नहीं लेता पति पुत्र को माता कह कर पुकारता है, सास श्वसुर भी अमुक की माता अमुक की बहु कह कर बुलाते हैं।

कृष्ण दास—वाह हड़मती! तुम ने क्या अच्छी बात कही है, इसी प्रकार भक्त जन भी भगवान् का नाम लेते हुए तन्मय हो जाते हैं और उसी की सत्ता का भजन करते हुए अपनी सत्ता को मिटा देते हैं, कैसा हृदय ग्राही उदाहरण कहा है, और मेघ से कन्या की उपमा कैसी है!

हड़मती—भगवन्! मेघ समुद्र से उत्पन्न होते हैं भाप बन कर ऊपर उड़ते हैं वायु उनको उड़ा ले जाती है और स्थान स्थान पर उससे वर्षा होती है वह पृथ्वी में प्रविष्ट हो कर अनेक प्रकार के वृक्ष, अन्न, फल, फूल सब को ही उत्पन्न कर के पृथ्वी को हरा भरा कर देते हैं, इसी प्रकार कन्या माता पिता से उत्पन्न हो कर अन्य स्थान पर पुरुष से ब्याही जाती है और उस के हृदय को अपना स्थान बना कर, उस को सन्तानवत, प्रतिष्ठावान्, और बलवान् बनाती है।

कृष्ण दास—वाह भाई वाह ! बहुत अच्छे, भक्त भी तो ऐसा ही करते हैं, मनुष्यों के कुल में जन्म लेकर वे गुरु के कुल में सम्मिलित ईश्वर की प्राप्ति करते हैं, अर्थात् ईश्वर के साथ उनका विवाह होता है और वे कन्या के समान अपनी जाति और सत्ता को मिटा कर दया धर्म और परोपकार का जल इस संसार में बरसाते हैं और जगत् सुन्दर हो जाता है, देखो इसी भाव को गोसाईं तुलसीदास जी ने इस प्रकार कहा है।

हो जानत प्रीत, रीत, रघुराई।
हो नाते, सब हाते, कर राखे राम स्नेह सगाई ॥

यदि भक्त न होते तो यह संसार महान् कुरूप और बड़े कष्ट का स्थान होता भक्तों से यहां शान्ति आती है और उन को देख कर संसारी लोग भी उपकार करने लगते हैं। और मोती से कन्या की तुलना कैसे है ?

हड़मती—मोती सीप के गर्भ से उत्पन्न होता है, समुद्र तल में न कोई उसे देखता है और न उसका आदर होता है, परन्तु वहां माता के उदर से जब बाहर निकलता है तो जोहरियों के द्वारा वह राजा महाराजाओं तक पहुँच कर उन के मुकुट पर प्रकाश करता हुआ मुकुटमणि कहलाता है।

कृष्ण दास—वाह जी वाह ! यही दशा भक्त की भी है, अपने देश में उसे कोई भी नहीं पूछता कहावत प्रसिद्ध है

"It is distance which lends us enchantment."

"घर का जोगी जोगना अन्य गाओं का सिद्ध" परन्तु परदेश में लोग उसका आदर करते हैं" और कृष्ण दास कुछ कहने ही को था कि सेठ कर्मचन्द टीकमचन्द ने रणमल को कहा "कहां राम राम कहां टांय टांय" आये थे किसी और काम के लिये, साधु ने राम रौला मचा दिया, यदि यही दशा रही तो फिर वर्षों व्यतीत हो जाएंगे बातचीत क्या होगी।

कृष्ण दास और हड़मती को कुछ अनुचित सा जान पड़ा, परन्तु दोनों चुप हो गए, अवसर देखकर रणमल बोला "हड़मती और कृष्णदास दोनों ईश्वर भक्त हैं जिन का जैसा भाव होता है वही उनको सूझता है इन की बात चीत बहुत अच्छी है, परन्तु साधूराम जी! हड़मती से आवश्यक बात का निर्णय कर लीजिये" रणमल का अन्तिम वाक्य सुन कर हड़मती चौकन्ना हो गया, क्यों कि वास्तव में वह नहीं जानता था कि यह लोग विशेष प्रयोजन से यहां आए हैं, परन्तु वह चुप रहा।

कृष्णदास—हां, हड़मती! तुमने कहा था कि कन्या का विवाह मैं शीघ्र नहीं करूंगा, इसका, क्या अभिप्राय है?

हड़मती—उतावली का कर्म प्रेत कर्म होता है, जब तक मनुष्य भली भांति विचार न कर ले तब तक कोई काम न करे, नहीं तो यह कहावत इस पर घटती है—

बिना बिचारे जो करे, सो पाछे पछताय।
काम बिगाड़े आपना, जग में होत हंसाय॥

तीन बातें हैं, जिनका विचार कर लेना आवश्यक है सब से पहली बात वर है फिर घर कुल है इन के पश्चात् यह देखना चाहिए कि इस विवाह करने से कन्या प्रसन्न रहती है वा नहीं और जब इन बातों की ओर से सन्तोष हो जाए तब विवाह कर दे।

कृष्णदास—वर अच्छा, घर अच्छा, कुल अच्छा, सब कुछ अच्छा है यदि तुमको इन सब बातों से सन्तोष हो जाए फिर तो विवाह कर देने में कोइ बाधा नहीं है न ?

हड़मती—मेरी अन्तिम बात रह गई, जब तक मुझे विश्वास न हो जाए कि कन्या प्रसन्न रहेगी तब तक मैं विवाह का साहस न करूंगा।

कृष्णदास—हां इस ओर से भी निश्चिन्त रहो, और तो कोई शंका नहीं ?

हड़मती—कहिये, ऐसा वर आप ने कौन सा देखा है ? मैं सुन तो लूं तब आप को उत्तर दूंगा।

कृष्णदास—वर जाति का क्षत्रिय है बहुत धन सम्पति और प्रतिष्ठा वाला है।

हड़मती—परन्तु मैं तो क्षत्रिय नहीं हूं, कोई क्षत्रिय कुम्हार की कन्या कैसे ब्याहेगा, उसके भाई बन्धु क्या कहेंगे, और फिर मुझे भी तो अपनीजाति का विचार है।

हड़मती के अन्तिम वचन की उष्णता ने सेठ कर्मचन्द के ताप को अपनी मर्यादा से ऊंचा चढ़ा दिया, उस से न

पारे

रहा गया, अपने भाव को शान्त रखने की शक्ति भी किसी २ में होती है, उसने नाक भौं बना कर कहा "हड़मती! बुद्धि मारी गई है, तू अपनी स्थिति का विचार नहीं करता, देख यह पाटन नगर से पांच मनुष्य आ गए हैं और इसी अभिप्राय से आये हैं।

हड़मती हंसे "सेठ जी! आप बुरा क्यों मान गये, मैं इन लोगों से मिल चुका हूं, यह महाराज सिद्धराज के भाट हैं, हां, इस में सन्देह नहीं कि यह मैं नहीं जानता था कि यह मेरी कन्या के सम्बन्ध में बात चीत करने आये हैं, अस्तु अच्छा हुआ जो आप ने बता दिया, मैं कन्या का पिता हूं यदि इस प्रकार सावधानी से बात करता हूं तो क्या बुरा करता हूं राजा प्रजा सब को अपनी कन्या की भलाई का विचार होता है, आप कुपित क्यों हो गए।

रणमल—हड़मती! सुनो, सेठ जी कुपित नहीं गये, तुम इसी स्थान के निवासी हो इन का स्वभाव जानते हो, यह बड़े उतावले हैं, इनका अभिप्राय इस बात के करने से यह था कि किसी प्रकार इस बात का शीघ्र निर्णय हो जाए, उन्होंने तुम्हें बता दिया तुम्हारी कन्या के सम्बन्ध में बात चीत करने आया हूं इस लिये अब मुझे बात करने का साहस हुआ है।

हड़मती—कविराज जी! आप जानते हैं मैं निर्धन मनुष्य हूं एक तो निर्धन दूसरे नीच कुल में जन्म लिया है, हम कंगालों को पूछता कौन है, यह कुछ भगवान् ही की कृपा

है कि आप यहाँ आए हैं, क्या आप किसी कुम्हार की ओर से सन्देश लाए हैं।

रणमल—महात्मा ने तुम को कह दिया है कि तुम्हारी कन्या का अभिलाषी एक उच्च कुल का मनुष्य है।

हड़मती—रणमल जी! परन्तु आप जानते हैं, विवाह, सगाई, और मित्रता सदैव बराबर वालों ही में अच्छे रहते हैं, अधम जनों के साथ सम्बन्ध करने से उच्च पुरुषों की प्रतिष्ठा नहीं रहती, दोनों ही साधारण लोगों की दृष्टि में पतित हो जाते हैं।

रणमल—ऐसा न कहो, बड़ों के साथ सम्बन्ध करने से छोटों का आदर बढ़ता है और बड़ों का यश और भी अधिक होता है।

हड़मती—मैं आप के कथन का विरोध कैसे करूं, मैंने आज तक किसी छोटे वृक्ष को बड़े वृक्ष की छाया तले फूलते फलते नहीं देखा, इसी प्रकार मनुष्यों की भी दशा है।

रणमल—चन्दन से मिलकर एरण्ड आदि वृक्ष भी सुगन्धित हो जाते हैं, यह तुमने सुना ही होगा।

हड़मती—सुनने को तो मैंने अवश्य सुना है, परन्तु कभी अनुभव नहीं किया कौन जाने यह कवियों की अत्युक्ति हो, परन्तु रणमल जी! यह आप जानते हैं यदि नीच कुल का मनुष्य उच्च कुल की कन्या को व्याह लाए, तो वह तपस्वी न इधर का रहा न उधर का रहा, उच्च कुल वाले तो न उसे

कभी अपने अन्दर बैठने के योग्य समझेंगे, और नहीं वह अपने पूर्व बान्धवों में बैठने को अच्छा समझेगा, और यदि ऊंची कुल का मनुष्य नीच कुल से कोई कन्या व्याह ले तो वह अपने साथियों की दृष्टि में कंटक बना रहेगा और निर्धन स्त्री को ऊंचे वंश की स्त्रियां घृणा को दृष्टि से देखेंगी सारांश यह है कि इस प्रकार का सम्बन्ध दोनों दलों के लिये हानिकर है, अच्छा यही है कि बड़े बड़े लोगों के साथ सम्बन्ध जोड़े और छोटे अपने समान स्थिति वाले मनुष्यों के साथ, मैं नहीं समझता कि कोई उच्च पदवी का मनुष्य मेरी कन्या के साथ विवाह कर के प्रसन्न रहेगा एक तो कन्या का जीवन विपत्ति का जीवन हो जाएगा और जगत् मेरी ओर व्यर्थ उंगुली करेगा, आदर और प्रतिष्ठा का बढ़ना तो एक ओर रहा।

रणमल—बातें तो तुम अनुभव को कर रहे हो, परन्तु पांचों उंगुलियां समान नहीं होतीं, जिस समय तुम सुन लोगे कि तुम्हारी कन्या का अभिलाषी कौन है और किस विचार से विवाह करना चाहता है तो मुझे आशा है कि तुम्हें स्वीकार करना पड़ेगा।

हड़मती—मेरे स्वीकार और अस्वीकार के सम्बन्ध में अभी से कोई सम्मति करना उचित न होगा, आप को कदाचित् यह पता नहीं है कि मैं और भांति का मनुष्य हूं, मुझे संसार के धन और आदर की आवश्यकता नहीं है और

न मैं अपनी जातीयता को कलङ्क लगाना चाहता हूं, हां क्योंकि आप इसी विचार के लिये आये हैं, आप कहिये, मैं सुन लूं कि मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाने का विचार किस राजपूत को है, उस समय मुझे और भी अपने भावों को प्रकट करने का अवसर मिलेगा।

नवम परिच्छेद।

हीला हवाला

"खौफ की हालतमें मनुष्य हीले से काम लेता है"

हड़मती—हां महाराज! उस राजपूत के नाम से मुझे भी तो परिचय दीजिये।

सेठ कर्मचन्द—हड़मती! तुझे क्या हो गया है, क्या तू नहीं जानता कि ये किस के भाट है।

हड़मतो—यह तो मैं जानता हूं, परन्तु इनको मैं यह तो नहीं जानता कि किसने मेरे मास भेजा है।

सेठ–ये जिस के भाट है उसी ने तो इन को भेजा होगा, ये और किसी के नौकर तो नहीं है, राज पुरुष प्रत्येक मनुष्य की सेवा तो नहीं किया करते फिरते।

हड़मति—सत वचन, कहिये रणमल जी आप क्या आज्ञा करते हैं।

रणमल—मैं महाराज सिद्धराज जयसिंह, गुजरात नरेश की ओर से तुम्हारे पास आया हूं, और यह सन्देशा लाया हूं कि तुम रानक देवी को महाराज की पटरानी बनने के लिये मेरे अर्पण करदो।

हड़मति—इस का प्रमाण ?

अब तो रणमल पर वज्रपात हुआ, वह पाटन नगर से रानक का पता लेने ही के अर्थ निकला था, यह आशा कब थी कि वह उसे अवश्य ही मिल जाएगी और वह इसे ले जाकर राजा की सेवा में भेंट करेगा, यह तो समय की बात थी कि मझ्योड़ी आते ही उस को पता लग गया, नहीं तो पद्मनी स्त्रियें कहीं मारी मारी तो नहीं फिरतीं, पता नहीं पृथ्वी सूर्य्य के चारों ओर कितनी वार घूमती होगी, तब जाकर कोई पद्मनी संसार में जन्म लेती होगी, परन्तु वह बुद्धिमान मनुष्य था सोच विचार कर बोला "मेरी यहां पर विद्यमानता ही स्वयं एक प्रमाण है"।

हड़मति—देखिये कविराज जी! मैं गंवार मनुष्य हूं, केवल साधारण संस्कृत मैंने सिन्ध देश में रह कर पढ़ी है

परन्तु इतना ज्ञान तो मुझ को भी है, कि आप इस अभिप्राय से यहां नहीं आये थे, कि मेरी कन्या को महाराज सिद्धराज जी के पास ले जावें, प्रथम तो आप कई दिनों से मुझे मिलते रहे हो, कभी उस का प्रसंग ही नहीं चलाया, दूसरे यद्यपि सिद्धराज जी गुजरात के राजाओं में मुकुट हैं परन्तु यह राज्य राखनगार का है, राजा से पूछे विना कोई उस की प्रजा को नहीं लेजा सकता, तीसरे यदि आप इस संकल्प से आये होते तो यथा सम्भव किसी कुम्हार के द्वारा संदेशा लाए होते, चौथे मुझे सन्देह है कि सिद्धराज जैसा प्रतापी राजा कदाचित कुम्हार की कन्या को अपनी रानी बनाना पसन्द करेगा, राजा राजा ही है और कुम्हार कुम्हार ही है, पांचवां कोई बुद्धिमान् राजा इस प्रकार के कठोर और दुःसह संदेश नहीं भेजता, छठे मैं कन्या का पिता हूं, राजा को किसी अंश तक मेरे मनके भावों का ध्यान रखना चाहिये था, आठवा आपके पास मेरे राजा राखनगार की कोई लिखित आज्ञा नहीं है, और न उनके दरबार का कोई अहलकार आप के साथ है जो मुझे आप के कथन का विश्वास दिलाए संभव है यहां आकर मेरी कन्या को देख लिया हो अथवा और किसी ने आपको भेजा हो, विना आश्वासन के मैं आप पर कैसे भरोसा करूं।

बात युक्ति युक्त थी, रणमल अपनी कविता को भूल गया, उसने उत्तर देने को दे दिया, परन्तु झूठ के पांव नहीं

होते, वह सिद्ध न कर सका कि उसका आना सिद्धराज की ओर से हुआ है।

संसार में इसी प्रकार जिस संकल्प जिस भाव और जिस इच्छा में दृढ़ता नहीं होती उसके प्रकट करने में सदैव मनुष्य को मुंह की खानी पड़ती है और उसके सम्पूर्ण यत्नो में निर्बलता और असारता रहती है, मनुष्य परमेश्वर की भक्ति करने चलता है, कठिन मार्ग को स्वीकार करता है परन्तु मन सांसारिक वासनाओं का लक्ष्य बना रहता है, ज्ञान हो भक्ति हो कर्म्म हो व धर्म्म हो, इनमें से कोई काम बिना गुरु की कृपा के पूर्ण नहीं होता, गुरु अपना आत्मिक बल देकर, भक्त, ज्ञानी, कर्म्म निष्ठ, धर्मात्मा व योगी को पहले सत्य मार्ग पर चढ़ा देते हैं, तब उन में साहस दृढ़ता पवित्रता और सच्चाई आती है, और सत्सङ्ग में धर्म्म के सौवर्ण सिद्धान्त हृदयङ्गम कराके तब उनको धीरे २ तत्व ज्ञान देते हैं और मनोरथ सिद्ध कर देते हैं, प्रत्येक स्थान पर एकही नियम काम करता है, घटना और अवस्था में भेद हुआ करते हैं, यह सत्य है, रणमल को रानक के पद्मनी होने का ज्ञान था परन्तु इसे सिद्धराज से आवश्यक और उचित तथा दृढ़ कार्य्यवाही करवानो चाहिये थी, वह दृढ़ संकल्प के बलसे यहां आता, उसे उस समय एक कंगाल मिट्टी के बर्तन बनाने वाले कुम्हार के सन्मुख ऐसी लज्जा न उठानी पड़ती और न निरुत्तर होकर यह दुर्दशाहोती।

रणमल को विस्मित देखकर सेठ कर्मचन्द टीकमचन्द बोला "हड़मती ! क्या तुझे मेरा भी विश्वास नहीं है, तू जबसे यहां रहता है, मेरा तेरे साथ व्यवहार है, मैं झूठ नहीं कहूंगा, मैं इनको भली भान्ति जानता हूं, मेरा कथन मानले।

यदि आपकी बात मानलूं तो फिर मुझे क्या करना चाहिये।

सेठ—रानक देवी को इनके अर्पण कर देना चाहिये।

हड़मती—बहुत अच्छे; सेठ जी ! आप क्या कहते हैं, मेरा और आप का व्यवहार रुपया पैसा का है, परन्तु प्रत्येक विषय में तो मैं आप पर विश्वास नहीं कर सकता, कैसे सम्भव है कि कोई मनुष्य अपनी कन्या आपके कथन मात्र से ही किसी के अर्पण कर दे, यह आप समझ सकते हैं, संसार में मैं ही एक कन्या वाला नहीं हूं सब की सन्तान है, आप स्वयं न्याय कीजिये फिर यदि मैं मान भी लूं कि राजा सिद्धराज मेरी कन्या को अपनी पटरानी बनाना चाहते हैं, तो राजा की रानियां दोचार अज्ञान मनुष्योंके साथ तो भेजीनहीं जासकतीं, उनका आदर प्रतिष्ठा का भी तो कुछ मान होता है यदि मैं आज अपनी कन्या पाटन नगर में भेज दूं, और राजा राखनगार सुनले, और वह मुझ से पूछे कि तूने ऐसा क्यों किया तो मेरे पास क्या उत्तर है, जल में रह कर मकर को युद्ध के अर्थ आवाहन करना यह कौनसी बुद्धिमत्ता की बात है।

सेठ कर्मचन्द—तू बड़ा कहां का बुद्धिमान हो गया है, जो किसी पर विश्वास ही नहीं करता।

कृष्णदास—सुनो सेठ जी ? क्रोध करने को बात नहीं है, इस समय हड़मती ने जो कुछ कहा सत्य सत्य कहा है, मनुष्य का गुण यही है कि वहजो कुछ करे सोच समझ करकरे, जो बिना विचारे कार्य्य करते हैं उनका परिणाम अच्छा नहीं निकलता इस में उतावली की क्या आवश्यकता है।

रणमल—उतावली तो मैं इसी हड़मती की भलाई के लिये कर रहा हूं। इस समय राजा का ध्यान इस की कन्या की ओर है, कल की न जाने क्या हो जाए, राजाओं की प्रकृति परिवर्तन शील हुआ करती है।

हड़मती—फिर जहां प्रकृति का ठिकाना न हो वहां अपनी कन्या न देना अच्छा है कोई मनुष्य इस भाव से तो सन्तान उत्पन्न नहीं करता कि उसको कूंए में डाल दे, शास्त्र कहते हैं, कन्या और गौ की स्थिति एक सी है उसकी जिह्वा नहीं होती जिसे चाहो उन्हें अर्पण करदो, ननुनच नहीं करेंगी परन्तु यह माता पिता का धर्म है कि वे कन्यां के लिये योग्य वर ढूंढ़ें।

सेठ—हड़मती नहीं मानने का, जाति का कुम्हार और भाट ब्रह्मणों को शास्त्र सुनाता है, कलियुग आगया इस में तनिक सन्देह नहीं है।

हड़मती—कुम्हार के घर जन्म लेने से मैं मनुष्य से पशु तो नहीं बन गया और यदि कुम्हार ऐसी निर्लज्ज जाति है तो फिर उसकी कन्या के लिये क्यों इतना आवश्यक विवाद करते हो, इस प्रकरण को दूर कीजिये, जाने दीजिये।

सेठ—तू बहुत बातें करता है, इसका फल तुझे भोगना पड़ेगा।

हड़मती—यह क्यों ? मैं अपनी कन्या किसी अन्य जाति में नहीं देता इसमें किसी का बुरा क्या करता हूं ? और मुझ पर बलात्कार और कठोरता करने का किसी को क्या अधिकार प्राप्त है, और मुझे धमकाते क्यों हैं, यही न कि आपका सौ पचास रुपयों का ऋणी हूं आप व्याज समेत रुपये ले लीजिये, मेरे प्राण तो नहीं ले सकते, सौ बातों की एक बात यह है, कि जब तक मेरी देह में प्राण हैं किसी को भी अपनी कन्या नहीं दूंगा चाहे कोई प्रसन्न हो वा अप्रसन्न हो, और जब तक शरीर में रक्त है मैं उसकी रक्षा करूंगा यदि आपके पास बल और शक्ति है तो हम दीन जनों का भी परमेश्वर रक्षक है। बात कहां से कहां जा पहुंची, समझदार लोग समझ गये कि सेठ की उतावली काम को बिगाड़देगी, कृष्णदास साधु ने हड़मती को कहा "हड़मती ! तुम बुद्धिमान हो ऐसे बचन वाणी पर मत-लाओ इनकी आवश्यकता नहीं है।"

हड़मती—भगवन्! आप जानते हैं मैं भोलाभाला

सरल प्रकृति का मनुष्य हूं "उधो के लेने में न माधो के देने में" अकारण यदि कोई मनुष्य मुझे धमकाता है और दुःख देता है तो फिर मैं चुप कैसे रहूं, शोक! संसार में न्याय नहीं रहा सेठ जी मेरी पुत्री के सम्बन्ध में इस प्रकार कठोरता से बातचीत कर रहे हैं, परन्तु परमेश्वर न करे इस प्रकार की बात यदि इनके घर में होजाय तबवे क्या कहेंगे!

यह सुनना था कि सेठ कर्मचन्द टीकमचन्द जी अग्नि रूप होगए "अरे नीच कुम्हार! तेरा यह साहस, कि मुझको इतनी बात कहे"।

कृष्णदास और रणमल दसबन्धी ने सेठ को पकड़ लिया नहीं तो कौन जाने कि वह हड़मती के साथ क्या व्यवहार करता।

कृष्णदास—रणमल जी! यह क्या होरहा है, आप किस प्रयोजन से आए हैं और क्या कर बैठे!

रणमल—मेरा दोष नहीं है, यह सेठ जी का दोष है।

कृष्णदास—हड़मती! शान्ति करो, सेठ जी! अपने मन को सम्भालो। बात ही क्या है जिसके लिये आप भुजा उठाये हैं, मुझे हड़मती की बातचीत में न्यूनता नहीं जान पड़ती, माता पिता को अपनी सन्तान पर प्रत्येक प्रकार का स्वत्व प्राप्त हैं और शास्त्र निर्धन से निर्धन और नीच से नीच कुल को भी उससे वञ्चित नहीं रखते, रणमल जी आप लोगोंने व्यर्थ बातका बतंगड़ बना दिया, कभी इसप्रकार विवाद

से ऐसे विषय निर्णय किये जाते हैं सब स्थानों में कठोरता और बलात्कार से फल नहीं निकलता आप लोग पधारिये, मैं हड़मती को समझा दूंगा सम्भव है वह मान जाए।

सेठ—कहीं सीधी उंगुली से भी घी निकला है।

हड़मती—यदि मैं सीधा न होता तो सेठ जी आपको कभी टेढ़े होने का साहस न होता, परन्तु यह मैं आपको कह देता हूं मैंने इसी कन्या के कारण सिन्ध देश छोड़ा, कच्छ में मैं रहा, वहां के राजा लाखा फूलानी ने रानक के साथ विवाह करने की अभिलाषा प्रकट की, मैं कच्छ से भाग आया, मझ्योड़ी में इसी कारण ठहरा हूं कि राखनगार के राज्य में न्याय होता है, और यहां भी किसी ने मेरे साथ अन्याय करना चाहा तो या वह नहीं या मैं नहीं, मुझे अपना जीवन प्यारा नहीं है परन्तु यह कन्या प्यारी है।

सेठ—तो क्या तू मेरा ऋण भी न देगा।

हड़मती—आप मुझसे सौ रुपये के बदले कई शत ब्याज में ले चुके हैं मैं अधर्मी नहीं हूं जब रुपिया होगा आपको कौड़ी कौड़ी चुका दूंगा परन्तु यदि आप यह चाहें कि ऋण के ब्याज से मुझे दबा कर मुझसे अनुचित कार्य्य करवालें, यह कदापि नहीं होगा।

सेठ—आज से एक सप्ताह के अन्दर तुझे मेरा सब रुपया चुका देना होगा।

हड़मती—देखा जाएगा।

सेठ—एक सप्ताह के अन्दर यदि तूने मेरा लेखा न चुकाया तो मैं नालिश कर दूंगा, सम्पूर्ण घर बार कुर्क करा लूंगा।

हड़मती—तुम मेरा बाल बांका नहीं कर सकते, "राखनहार भये भुज चार तो क्या बिगड़े दोउ भुज के बिगाड़े" यह न समझिये कि इड़मती निर्धनहै और कुम्हार है, मैं प्राणों पर खेलने वाला मनुष्य हूं जिस को प्राणों का भय नहीं उस का सामना आप जैसे ब्याज खाने वाले नहीं कर सकते।

सेठ का हृदय कांप उठा और क्रोध से उस के होंट फड़कने लगे, शंकरदास ने फिर इन दोनों को समझा कर बीच बचाओ कर दिया और हड़मती से कहा "तुम ईश्वर के भक्त हो इतना क्रोध क्यों करते हो?"

उसने उत्तर दिया "देखिये, चढ़ाई इन की ओर से की गई है व मेरी ओर से?"

शंकरदास—इनको तो धन का गर्व है।

हड़मती—तो फिर मुझे भी परमेश्वर का गर्व है।

शंकरदास—धन्य हो, हड़मती! धन्य हो, ईश्वर पर विश्वास रखने वाले पर कभी विपत्ति नहीं आती, तुम निःशङ्क रहो परन्तु इस समय कहो कि रणमल को क्या कह कर टाला जाए?

हड़मती—इनको समझाईये, कुम्हार की कन्या क्षत्रिय कुल के योग्य नहीं समझी जाती परन्तु यदि सिद्धराज को वास्तव में रानक के साथ विवाह करने की अभिलाषा है तो उस के लिये उचित रीति से कार्य्य किया जावे और मुझे विश्वास दिलाया जाए कि यह सन्देशा स्वयम् राजा की ओर से है, तब मैं विचार करूंगा और विचार के पश्चात् जो मुझे उचित जान पड़ेगा वैसा करूंगा।

रणमल—बस बस अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है, तुम को आज से दो मास पश्चात इस का विश्वास किसी न किसी तरह दिलाया जाएगा ।

सेठजी ! आप भी क्रोध न करें, हड़मती स्वयं बुद्धिमान है, सब प्रबन्ध उचित रीति से कर लिया जावेगा।

दशम परिच्छेद ।

विवाह ।

मन में यदि प्रीतम का निवास हो तो विवाह है ।

शंकर दास, सेठ कर्म चन्द टीकमचंद और रणमल दसवन्धी अपने साथियों को साथ लिए हुए चले गये, हड़मती घर के अन्दर आया, वह उदास था रानक ने उस का हाथ मुंह धुलाया कुछ जलपान कराया और जब वह शांत होकर बैठा उसकी स्त्री पुञ्जी और कन्या रानक दोनों ने पूछा कि सेठ के साथ विवाद हो जाने का क्या कारण था, ऐसी घटना तो पहिले कभी नहीं हुई, उसने सारी वार्ता आदि से अन्त तक कह सुनाई, पुञ्जी स्त्री ही तो थी लोभ में आगई, बोली "तो उस में तुम्हारी हानि ही क्या थी, यदि सिद्धराज इस को अपनी रानी बनाना चाहता है तो यह इस का सौभाग्य है स्वीकार क्यों नहीं किया, तुम जानते हो, रानक कौन है, उत्तम कुल की कन्याएं उत्तम कुल में ही ब्याही जाती हैं, मैंने तो भली भांति समझ लिया है कि रानक किसी कुम्हार के घर नहीं जा सकती, क्या इस के रङ्गढङ्ग से तुम्हें

जान नहीं पड़ता, यह केवल हम लोगों को प्रसन्न रखने के लिये घर के काम काज करती है, जहां भेजो, चुपचाप चली जाती है, वास्तव में यह इन कार्य्यों के योग्य नहीं है, तुम ने बड़ी भूल की, ऐसे अवसर बारम्बार हाथ नहीं आते और फिर क्या जाने इस ऊंच नीच का क्या परिणाम हो, सेठ बुरा मनुष्य है तुम उसके ऋणी हो सिद्धराज भी बलवान है, तुमने इन सब बातों पर विचार नहीं किया।

हड़मती—मैंने भलि भाँति विचार करके उत्तर दिया है।

पुञ्जी—तुम ने क्या सोचा था, कुछ भी नहीं यदि सोच समझ कर बात की होती तो सेठ कर्म चन्द से इस प्रकार की हाथापाई की दशा न आती।

हड़मती—अभी बाहर से मैं लड़ कर आया हूं क्या तू भी मेरे साथ घर में लड़ना चाहती है?

पुञ्जी हंसी "नहीं" मैं लड़ना नहीं चाहती, परन्तु रानक मेरी भी तो पुत्री है मेरा भी तो उस पर कुछ स्वत्व है।

रानक ने माता की ओर दृष्टि की और फिर पिता को देखा।

हड़मती ने कहा—सुन्दरी! यद्यपि रानक तेरे अंक में पली है, परन्तु तू उसका स्वभाव नहीं जानती, मैं भली भांति समझता हूँ।

पुञ्जी—भला मैं भी तो सुनूं, अब तक तो मैं यही सुनती आई हूं कि पुरुषों को स्त्रियों के स्वभाव का पता नहीं

होता, कुछ स्त्रियां ही स्त्रियों के स्वभाव को जानती हैं परन्तु आज तुम कह रहे हो कि पुरुष ऐसी बातों को स्त्रियों से भी अधिक समझते हैं सम्भव है यह सत्य हो यद्यपि मैं विश्वास नहीं करती।

हड़मती—रानक से पूछ देखो।

पुञ्जी—आज तक किसी ने कन्या से ऐसे विषय पर विचार किया है उस विचारी को क्यों लजाते हो, जो कुछ कहना सुनना है मुझ से ही कहो सुनो।

हड़मती—सिद्धराज के घर में सौलह सौ रानियां हैं, और न जाने कितनी अन्य स्त्रियां हैं, मैं रानक को केवल उसी के साथ ब्याहूंगा जिसके यहां कोई स्त्री न हो, और फिर जब तक वह किसी के साथ स्वयं विवाह कर देने पर सहमत न होगी तब तक मैं भी बलात् वा दढ़ात् उसका ब्याह न करूंगा, मैं उसे अपने नेत्रों का तारा समझता हूं प्रारब्ध पर तो किसी का अधिकार नहीं है परन्तु मुझ से जहां तक हो सकेगा, इस का किसी अच्छे घर में ब्याह करूंगा जिससे यह सुखी रहे।

पुञ्जी—बात तो सत्य कहते हो, परन्तु यह तो बताओ कि आज कल कौनसा अच्छा घर है जिसमें पुरुष दो चार स्त्रियें नहीं ब्याह सकते, और फिर राजाओं का तो कहना ही क्या है, किसी २ के महल में तो सहस्रों तक की संख्या पहुंच गई है, तुमको कोई बड़ा घर कठिनता से मिलेगा।

हड़मत—चिन्ता न करो, कन्या कभी कुंवारी नहीं रहती, पुरुष चाहे कुंवारे रह जाएं, क्या आज तक तूने किसी कन्या को बिना विवाहे देखा है ? हाँ।

पुञ्जी—नहीं, यह तो सत्य है, परन्तु रानक के मन की बात क्या है।

हड़मती—क्या अब तक मैंने तुझे नहीं बता दिया, जो तू फिर भी पूछती है, मन में आवे तो उसे एकान्त में लेजा कर पूछ देख, मैं झूठ नहीं कहता, रानक भोली भाली अवश्य है परन्तु बुद्धिमती भी है।

पुञ्जी—मैं एकान्त में क्यों ले जाऊं, मेरी पुत्री लज्जावती नहीं, तुम उसके पिता हो माता पिता से लजाना कैसा, बता पुत्री ! क्या सिद्धराज से विवाह करना तुझे स्वीकार नहीं है ?

रानक ने लज्जा से ग्रीवा नीची करली।

पुञ्जी—पुत्री ! यह लजाने का समय नहीं हैं, तू सुन चुकी है, कि तेरे विवाह के सम्बन्ध में तेरे पिता का सेठ जी के साथ विवाद हो गया है, वे किसी और विचार में हैं, मैं किसी और विचार में हूं और ईश्वर जाने तेरा विचार क्या है, ऐसा न हो कि भूल में कुछ और का और ही हो जाए फिर हम सब को कष्ट उठाना पड़े इस लिये तुझे अपने मन की बात कह देनी चाहिये।

रानक फिर लजाई और अपने सिर को मां के अंक में डाल कर छिपा लिया।

हड़मती—बेटी! तू क्यों लज्जा करती है, यह तेरा दुर्भाग्य है कि तू कुम्हार के घर पली है" तेरे माता पिता निर्धन और नीच कुल में जन्मे हैं, नहीं तो तू ने सुन रखा होगा, पूर्व समयकी क्षत्रिय कन्याएं अपने लिये आप पति चुनती थीं, स्वयम्बर रचा जाता था, स्वयम्वर का अर्थ यही है कि कन्या अपने लिये आप पति पसन्द करले, सीता ने ऐसा ही किया, द्रोपदी ने ऐसा ही किया और चिरकाल से ऐसी रीति ही चली आती है, सावित्री ने राज कन्या हो कर सत्यवान भिक्षुक को अपना पति बनाया, मनु की पुत्री देवदूती ने कर्दम ऋषि को अपना पति अंगीकार किया, कहां तक मैं तुझे सुनाऊं, बेटी! यद्यपि मैं निर्धन हूं, परन्तु तू जानती है, मैं तुझको हृदय से स्नेह करता हूं, और तुझको प्रसन्नता पूर्वक स्वतन्त्रता देता हूं कि जिस प्रकार के पति के अर्थ तेरा विचार हो उसे स्पष्टतया प्रकट करदे। अब अधिक सन्तोष की आवश्यक्ता नहीं, यदि तू ने शीघ्र ही इसका निर्णय नहीं किया, तो सेठ मेरा शत्रु हो गया है, वह आज ही मुझे ऋण का रुपया दे देने की धमकी दे गया है, सिद्धराज के भाट उसके साथ हैं, वह राजा को शत्रुता के लिये उत्तेजित करेगा फिर मुझ से कुछ करते धरते न बनेगा, हां यह अवश्य है कि पहिले मैं मरूंगा तब किसी को तुझे ले जाने का साहस होगा परन्तु यदि आज तू मुझे अपने मन का भाव बतादे तो अभी समय है मैं उसी के अनुसार काम करूंगा।

रानक उस समय लज्जा के सरोवर में नहाई हुई थी उसका शरीर स्वेद जल से तर हो गया था। उसने अपने आप को बड़ी कठिनता से सम्भाला और हृदय को धैर्य्य देकर माता की ओर मुख करके सलज्जभाव होकर बोली "माता जी तुम्हारी पुत्री का विवाह हो चुका है अब दूसरा विवाह कैसे हो सकता है ?"

हड़मतो और पुञ्जी दोनों ही इस उत्तर से चकित रह गये, एक दूसरे का मुख देखने लगे, कुछ समय तक दोनों चुप थे, कौन जाने, उन दोनों के मन में उस समय क्या २ भाव उत्पन्न हुए होंगे, कुंवारी कन्या का अपने माता पिता के सन्मुख यह कहना कि उसका विवाह हो चुका है वास्तव में अचम्भे का विषय था।

हड़मती बोला—बेटा ! मैंने इस रहस्य को अब तक नहीं समझा, मैं जानता हूं कि मेरी पुत्री अत्यन्त भोली और सच्चरित्रा है, वह बिना विचारे कोई बचन भी मुख से नहीं निकालती, तू मुझे समझादे, तेरे इस कथन का क्या अर्थ है ? रानकदेवी ने फिर अपना शिर माता के अंक में छिपा लिया उसके नेत्रों से अश्रु बहने लगे, पुञ्जी घबराई "उसने कहा, पुत्री ! तू रोती क्यों है, अपना वृत्त क्यों नहीं सुनाती, स्पष्टतया कहदे, मैं क्रुद्ध नहीं हूंगी।

रानक ने शिर उठाया—माता जी ! मैंने प्रण किया है कि जो युवक मेरा हाथ पकड़ेगा मैं उसी की होकर रहूंगी

और यदि वह मुझे स्वीकार नहीं करेगा तो आयु भर कुंवारी रहूंगी, माता पिता की सेवा करूंगी, भाई को पालूंगी, और उसी की सन्तान को अपनी सन्तान समझ कर प्रेम करूंगी ?

पुत्री और हड़मती ने फिर एक दूसरे की ओर देखा।

हड़मती—तेरा हाथ किसने पकड़ा ?

रानक—जिसने मुझे यह अंगूठी दी थी, जो मैंने आपको दिखाई थी और अब तक मेरे पास विद्यमान हैं।

पुत्री और हड़मती ने फिर एक दूसरे को ओर देखा।

हड़मती ने कहा "पुत्री ! अंगूठी तो तुझे राखनगार ने दी थी।"

रानक—हां, वही मेरे उस समय से पति हो गये।

हड़मती—राजा ने उस समय तुझे कुछ कहा भी था ?

रानक—नहीं, केवल इतना कहा था, कि जिस समय कोई आवश्यकता पड़े, इस अंगूठी को दिखा कर मुझसे मिल सकती हो।

हड़मती—यह तो कोई बात नहीं हुई, राजे महाराजे प्रायः पुरस्कार में अंगूठियां दिया करते हैं, इससे तैंने कैसे परिणाम निकाला कि वे तेरे पति होगये।

रानक—मैं यह तो नहीं कहती, कि वे अपने आपको मेरा पति मानते हैं परन्तु मैं अपने मन में उनको पति मान चुकी हूं।

यदि वे तुम्हें पसन्द न करें, तो फिर क्या करना पड़ेगा।

रानक—मैंने आपसे पहिले ही कह दिया है, आयु भर उनका नाम लेकर बैठी रहूंगी।

हड़मतो—यह भावना तेरे हृदय में कैसे उत्पन्न हुई ?

रानक—एक दिन स्वामी कृष्णदास आपसे कह रहे थे, कि ईश्वर, पति और गुण केवल भाव से प्रकट होते हैं, मनुष्य ईश्वर को अपना मान लेता है, वह उसी का हो जाता है केवल मान लेने और विश्वास के दृढ़ करने की बात है जिसको विश्वास है उसको ईश्वर मिलता है, मुझे भी पति का ऐसा ही विश्वास है मैंने भी विश्वास से उनको पति बना लिया।

हड़मती—यह भाव प्रशंसनीय है, सारी बात विश्वास की है, जिसको जिसपर दृढ़ विश्वास होता है, वह उसे अवश्य मिलता है—

जा पर जाका सत्य स्नेहू, सो तेहि मिले न कछु सन्देहू ॥

रानकदेवी—यह मेरी भी प्रतिज्ञा है, चाहे कुछ ही क्यों न हो, मैं इस प्रण पर स्थिर रहूंगी, और जीवन भर अन्य पुरुष का नाम न लूंगी, मुझे सिद्धराज से कोई प्रयोजन नहीं है, ईश्वर, गुरु और पति यह बदला नहीं करते, स्वामी

जी ने यह कहा था कि जो पुरुष अपने भाव और भक्ति को बदलता रहता है वह व्यभिचारी और पतित होता है आपकी, कन्या पतित नहीं होगी उसका एक प्रकार का भाव रूप से विवाह होगया, और अन्य वर को खोजना व्यर्थ है यदि आप मुझ से न पूछते और सिद्धराज का संदेशा स्वीकार कर लेते तो मैं बोलने वाली नहीं थी, जीते जी मर जाती अन्य पुरुष का मुख न देखती, अच्छा किया, आपने मुझ से पूछ लिया।

हड़मती और पुञ्जी दोनों ने रानक का मस्तक चूमा और उस के भाव की प्रशंसा की, और हड़मती ने कहा, पुत्री ! तू कुम्हार की कन्या नहीं है तू सिंधुराज की कन्या है क्षत्रिय कन्याओं के प्रण पहिले भी ऐसे ही हुआ करते थे, तू धन्य है।

रानक—पिता जी मैं आप के और माता जी के बिना और किसी माता को नहीं जानती, और न मुझे राज कन्या कहलाने की आकांक्षा है मैं कुम्हार ही की कन्या हूं और मेरा पति मुझे कुम्हारी सुता समझेगा यदि सिंधु देश का राजा मेरा जनक होता तो मैं आप के यहां न आती आप ही मेरे पिता हैं और रानक को कभी दूसरे की पुत्री न कहियेगा। हड़मती और पुञ्जी दोनों के नेत्र स्नेह के अश्रुतले से डबडबा गये, दोनों ने उसे आशीर्वाद दिया, रानक गुरु आशीर्वाद दे तो संसार में सती, सीता सौर सावित्री के समान तेरा यश दशो दिशाओं में व्याप्त हो, पति की प्यारी

बने और गुजरात देश की विवाहता स्त्रियां तेरा अनुकरण करें।

इस के अनन्तर हड़मती और पुत्री ने विचार किया, और अभी रात्रि शेष थी उन्होंने रानक और अपने छोटे बच्चे को साथ लिया और जूनागढ़ की बाट ली, और किसी के कानों तक भी यह समाचार न पहुंचा कि यह कहां चले गये, क्योंकि इन्होंने किसी को भी अपना भेद न बताया था यहां तक कि स्वामी कृष्णदास तक की भी सम्मति लेने की आवश्यकता नहीं समझी, और कठिन मार्ग पर चलते चलते जूनागढ़ में पहुंचे।

दूसरा खण्ड समाप्त।

एकादश परिच्छेद ।

शोक ।

नादानी का फल सदा शोक है ।

कहावत प्रसिद्ध है "धन धरा अरु नारी तीन युद्ध के कारी" परन्तु यही तीनों वस्तुएं इस संसार में मनुष्य को बनाती और बिगाड़ती हैं, यद्यपि एक भी मनुष्य ऐसा नहीं मिलता जो इन का रोना न रोता हो परन्तु सब के सब केवल इन के पञ्जे में अत्यंत फँसे हुए ही नहीं वरञ्च सब अपनी इच्छा से अपने आप को इन के जाल में फँसाये रखना पसंद करते हैं, और लाखों में से कदाचित एक आध ऐसा मिलेगा जिस को इन से छूटने की चिंता रहती है ।

यह तीनों विद्यमान हों तब भी मनुष्य इन के कारण दुखी रहता है और यदि ये तीनों न हों तब भी मनुष्य दुखी रहता है, इन्हीं तीनों के समष्टि रूप का नाम माया है, साधारणतया यह कहा जाता है कि माया भ्रमाती है, सत्य बात तो यह है कि मनुष्य आप अपनी मूर्खता से जान बूझ कर

माया के जाल में फंसता है, माया के बिना इस को शान्ति कब आती है।

दूसरे दिन प्रातःकाल सेठ कर्मचन्द टीकम चन्द वहां पहुंचा, जहां पांचों भाट ठहरे हुए थे, ये उस की बाट देख रहे थे, हड़मती ने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया था, परन्तु यह इतना जान गये थे कि उसने इनको टाल दिया था, पांचों सम्मति कर रहे थे कि रानक को किस प्रकार पाटन देश में ले चलें, परन्तु बुद्धि काम नहीं देती थी, हड़मती रुपया पैसा वा आदर प्रतिष्ठा को तुच्छ समझता था, यह आशा थी कि कर्मचन्द टीकमचन्द इस पर अपना ऋण का दबाओ डाल कर कार्य्य सिद्ध कर लेंगे परन्तु उसकी उतावली ने कार्य्य बिगाड़ दिया, बचन कुबचन तक बात पहुँच गई यह सत्य है कि हड़मती निर्धन था, निर्धन को दबाने के लिये सब को साहस होता है, परन्तु छोटे मनुष्यों की यह रीति है कि जब उन पर इस प्रकार की कठोरता और बलात्कार का व्यवहार किया जाता है, तो अन्य मनुष्य उस की सहायता के किये कटिबद्ध हो जाते हैं और बात बहुत बढ़ जाती है, यहां तक कि बलात्कार करने वालों को अपने प्राण बचाने कठिन हो जाते हैं।

भाट लोग स्नानादि नित्य कर्म से निवट कर इसी विचार में थे कि सेठ साहब वहां पहुंचे "दसबन्धी जी राम! राम!

रणमल—राम राम सेठ जी ! कहो क्या समाचार है ?

सेठ—आप लोग कुछ चिन्ता न करें, मैं हड़मती को सीधा कर लूंगा।

रणमल—उसका सीधा होना अतीव कठिन काम है, वह साधारण मनुष्य नहीं है जिस पर आप किसी प्रकार का दबाओं डाल सकें।

सेठ--आप क्या कहते हैं, रुपया में बड़ा बल होता है, जहां रुपया राम बोलते हैं वहां सब चुप हो जाते हैं।

रणमल—सब स्थानों पर रुपया काम नहीं देता, संसार में ऐसे मनुष्य भी हैं जिन पर रुपया का जादू नहीं चल सक्ता। सकता

सेठ—यह आप कहते क्या हैं, सरकार में, दरबार में रुपया पूजा जाता है व्यवहार में, व्यापार में रुपये ही का आदर है, हड़मती तो वस्तु ही क्या है बड़े २ ऋषि मुनि तक रुपये के जाल में फंस कर अपने इष्ट तक की टेक को छोड़ देते हैं, और किसी को क्या कहा जावे विष्णु भगवान तक तो स्वयं लक्ष्मी महारानी के वश में हैं, रुपया ने सम्पूर्ण जगत को अपना दास बनाया हुआ है।

रणमल—परन्तु हड़मती रुपये से वश में नहीं आवेगा वह और प्रकार का मनुष्य है।

सेठ—जब विष्णु भगवान स्वयं लक्ष्मी के वशीभूत हैं तो हड़मती की क्या गिनती है कि उस की मोहिनी से बच

सके, अब थोड़ा संतोष रखिये, और देखते चलिये, मैं किस प्रकार उसे नाच नचाता हूं, वह जाता कहां है। हां संतोष की आवश्यक्ता है। आवश्यकता

रणमल—आप क्या करेंगे?

सेठ—वह मेरा ऋणी है, जब मैंने कल उसे कहा कि मेरा रुपया एकसप्ताह के अन्दर अन्दर देदो, तो क्या आप ने देखा नहीं उस का रंग श्वेत हो गया मानो अन्दर से रक्त सूख गया हो, वह सब अपने मन में विचार करता होगा और आश्चर्य नहीं कि वह मेरे पास मध्यान्हकाल में आए और बिनती प्रार्थना करे।

रणमल—मुझे आशा नहीं है, मैंने देख लिया, वह बड़ा उग्रस्वभाव है और नियम का पक्का है, वह दबने वाला मनुष्य नहीं है।

सेठ—आप को अनुभव नहीं है, सेठ साहुकारों से पूछिये, वे किस प्रकार रुपये के शस्त्र से बड़ों बड़ों का गला काट देते हैं, राजे, महाराजे, कथन मात्र में संसार में शासन करते हैं, परन्तु यह भी महाजनों के दबाओ में रहते हैं, युद्ध में, शान्ति में, देश को बसाने में, प्रत्येक बात में रुपया की आवश्यकता रहती है, और वे भी सेठों के आश्रित रहते हैं।

रणमल—परन्तु आप यह नहीं कहते कि हड़मती को आप कैसे राह पर लाएंगे?

सेठ--कल मैंने उस को धमकी देदी, आज ही से वह रुपया एकत्र करने की चिंता में होगा, और जिस महाजन के पास रुपया लेने जाएगा, वह अवश्य मेरा पक्षपात करे-हीगा, यदि वह मुझ से नहीं दबता, तो मैं दूसरों के द्वारा उस पर दबाओ डालूंगा, और अन्त में विवश होकर उसे मेरी बात स्वीकार करनी ही पड़ेगी, हम लोग महाजन हैं जब थौड़ासा भी कोई मनुष्य हमारे वश में हो जाता है, तो हम लोग सर्वथा उसको जकड़ लेते हैं, और पीड़ीयों तक उसकी वंश को अपने पंजा में दबोचे रखते हैं, बनिये महाजन इसी प्रकार काम करते हैं, किसी को दस बीस दिये, ब्याज बढ़ते २ सौ और सहस्रों तक पहूंच गया, धन सम्पति, घर और भाण्डे, पशु, सम्पूर्ण वस्तुओं पर धीरे २ उनका अधिकार हो जाता है, और फिर किसी की क्या शक्ति, जो शिर उठा सके, रुपया का बोझ बहुत बुरा होता है।

रणमल—यह सब सत्य हो, परन्तु मुझे आशा नहीं है कि हड़मतो सुमार्ग पर आए।

सेठ—फिर उसका और उपाय भी है।

रणमल—वह क्या ?

सेठ—कुछ धन को नष्ट करके ऐसे बदमाश मनुष्य नियत कीजिये जो अवसर पाकर उसकी कन्या को बलात्कार उठाकर आपके पास भेजदें।

रणमल—सेठ जी ! यह कैसे सम्भव है, हम लोग परदेश में आए हुए हैं और हम केवल पांच मनुष्य हैं ईश्वर न करे, यदि कहीं लड़ाई झगड़ा हो गया, तो उसका क्या परिणाम होगा, और फिर हमारा राजा सिद्धराज हमको क्या कहेगा, इसमें बड़ा अपयश होगा, और हम जगत में मुख दिखलाने के योग्य न रहेंगे।

सेठ—आपने अब तक मेरी बात नहीं समझी, काम इस प्रकार हो कि सांप मरे और लाठी न टूटे।

रणमल—यह किस प्रकार ?

सेठ-बुद्धिमान सर्प के बिल में अपना हाथ नहीं डालते, वरञ्च कुछ दे दिला कर औरों के हाथ से सर्प को पकड़वाते हैं एक दो नहीं, काम करने के सैंकड़ों उपाय हैं, यदि वह सम्मति न हो तो दस बीस गुण्डों लुच्चों को इस काम पर लगाइये यदि उनकी सफलता न हो तो स्त्रियों से काम लीजिये हां इसमें रुपया अवश्य लगेगा।

रणमल—हमारे पास इतना रुपया कहां है, हमतो भिक्षुक मात्र हैं।

सेठ—रुपया लगाने के लिये मैं उद्यत हूं, हां, मुझे यह विश्वास हो जाए कि रुपया सूद समेत, मेरी पाटन नगर की कोठी में दिया जायेगा और जब आपका कार्य सिद्ध हो जायगा क्या सिद्धराज को मेरी कार्य्य कुसलता की ओर ध्यान न होगा, आप विश्वास रखिये, मेरे संकेत मात्र पर

काम कीजिये, मैं सब कुछ करा दूंगा इसमें तनक भी सन्देह नहीं है।

रणमल—हम लोग पाटन नगर क्यों न चले जाएं, वहां जाकर राजा को इस विषय का समाचार दें, और जो कुछ उसकी आज्ञा हो वैसा करें।

सेठ—थोड़े समय के लिये चुप होगया उसने अपने मनमें सोचा कि "यदि रणमल दसबन्धी चला गया, तो फिर मुझे क्या लाभ होगा सिद्धराज बलवान नरेश है, वह सहस्र विधियों से काम निकाल सक्ता है" यह सोच कर उसने कहा मेरी यह सम्मति नहीं है, जिस कार्य्य को आरम्भ किया है उसे अन्त तक निवाहना चाहिये कौन जाने क्या हो, हड़मती का क्या विश्वास है, क्या वह सिन्ध और कच्छ से इसी अपनी कन्या के लिये नहीं भागा था?"

रणमल—यह सत्य है, परन्तु इस समय पर मेरी बुद्धि में कोई बात नहीं आती मैं किं कर्तव्य बिमूढ़ होरहा हूं, यदि आपने उतावली न की होती, और उसको वचन कुवचन न कहते मैं समझा बुझाकर उसको प्रसन्न कर लेता अब बात दूर तक पहुंच गई है।

सेठ—संसार में ऐसा ही हुआ करता है, इससे कोई हानि नहीं हुई, आप वृथा घबराते हैं।

अभी भाट के साथ सेठ की बातचीत समाप्त नहीं हुई थी, कि साधु कृष्णदास वहां आ पहुंचे, सबने उनको

नमस्कार किया, साधु ने आशीर्वाद दिया इसी के आकार से कुछ व्याकुलता सी प्रकट होरही थी।

रणमल ने पूछा "कहिये महात्मन्! क्या वृतान्त है, आप इस समय कहां से आरहे हैं।"

कृष्णदास ने उत्तर दिया "क्या कहूं सेठ जी के क्रोध ने बना बनाया कार्य बिगाड़ दिया।

सेठ—यह तो अच्छी हुई, प्रत्येक पुरुष मुझ ही पर दोष लगा रहा है और मैं यद्यपि धन और बल की सहायता देने की प्रतिज्ञा कर चुका हूं, और सब भांति से उद्यत हूं।

कृष्णदास—परन्तु सब स्थानों में धन से ही काम नहीं सिद्ध होता।

सेठ—यह आप कहें मैं नहीं कह सक्ता, और जो कार्य सिद्ध होगा वह मेरे ही द्वारा सिद्ध होगा, आप सब लोग व्यर्थ मुझे दोषी ठहराते हो।

रणमल—कहिये महात्मन् जो समाचार आप लाए हैं, उसे सुनाइये; सेठ जी की बात की ओर ध्यान न दीजिये।

कृष्णदास—क्या कहूं कुछ कहा नहीं जाता, हाय, चुप भी नहीं रहा जाता मैं प्रातःकाल स्नान ध्यान पूजा पाठ आदि नित्य कर्म से निवृत्त हुआ मन में आया कि अकेले चल कर हड़मती को समझाऊंगा और उसे सहमत कर लूंगा, परन्तु वहां जाने पर पता लगा कि हड़मती रात्रि से ही वहां नहीं है और उसका कुछ पता नहीं है।

रणमल—वह कहां गया ?

सेठ—अकेले गया कि साथ बाल बच्चों को भी लेगया ?

कृष्णदास—वह बाल बच्चों को साथ लेकर चला गया, और किसी को पता नहीं है कि किधर चला गया, किसी से सम्मति नहीं ली, और किसी को अपना भेद भी नहीं बताया, मैंने पड़ोसियों से पूछा, परन्तु सब कानों पर हाथ धरते हैं और वे कहते हैं कि वह सेठ कर्म चन्द टीकम चन्द के भय से भाग गया मुझे हड़मती के साथ कोई निज का स्वार्थ नहीं था, मैं उससे सहानुभूति रखता था और मन से चाहता था, कि उसकी कन्या किसी अच्छे घर में ब्याही जावे, केवल इसी भाव से आप के साथ समझाने गया था, प्रतीत होता है कि वह मुझ पर भी शङ्कित हो गया है, अस्तु, जो हुआ भगवान की मौज से हुआ। अब पश्चाताप व्यर्थ है परन्तु आशा नहीं है कि हड़मती को कोई पा सके, वह पहले भी इसी प्रकार कई स्थानों से भाग आया था।

रणमल—शोक ! इस सेठ ने हमारे बने बनाए कार्य को बिगाड़ दिया, इतनी कठिनता से हमने रानक का पता लगाया था, अब सिद्धराज को आकर कैसे मुख दिखलाएंगे।

सेठ—शोक ! मेरा एक सौ रुपया मारा गया, और सूद भी गया यदि मैं पहले जानता कि मेरी बात चीत का यह परिणाम होगा तो कभी हड़मती के घर न जाता।

सेठ की दशा सोचनीय हो गई, मुख मण्डल पीला पड़ गया, कृष्णदास कहां तो पहिले व्याकुल और कहां अब सेठ और भाटों की दशा देख कर ज़ोर से हंसने लगा।

सेठ और सम्बन्धी दोनों ने पूछा, आप इतना हंसते क्यों हैं, हमें तो शोक हो रहा है और आप को हंसी सूझी है।

कृष्णदास ने उत्तर दिया "आप दोनों ही रानक देवी को धन सम्पत्ति और प्रतिष्ठा का साधन बनाने वाले थे, वह दो में से किसी के हाथ न आई, शोक तो होना ही था, जहां स्वार्थ और आशा का प्रश्न होता है, वहां दुःख है न सुख, सुनो, एक कथा सुनाता हूं, माया ने एक बार एक रूपवती स्त्री का वेष धारण किया, पथ में आकर बैठ गई दो नवयुवक सिपाही उसके आकांक्षी हुए, माया हंसी "पहले तुम आपसमें निबटलो, तब मुझ से कहो" वहां कौन मनुष्य था जो उन्हें समझाता, दोनों लड़ पड़े, घायल हुए मर गये, और माया अपने मार्ग पर चल पड़ी, यही अवस्था रूपान्तर से तुम्हारी है तुम दोनों ही को माया ने मार दिया, और किसी के हस्तगत न हुई, अब भी इससे शिक्षा ग्रहण करो।

भाट और सेठ दोनों ने साधु को किस भाव से देखा और उसने निरपेक्षता से अपने आश्रम की ओर मुख किया।

द्वादश परिच्छेद ।

निराशा

"निराश हुए तो मन की हालत बिगड़ी"

रणमल, शङ्करदास और सेठ कर्मचन्द ने स्वयमेव हड़मती की खोज की परन्तु उसका पता न मिला, किसी ने इतना भी तो न बताया कि वह किस दिशा में गया, अन्त में सब निराश हुए, रणमल कईदिनतक मभयोड़ी में पड़ा रहा, परन्तु जब देखा कि हड़मती का चिन्ह तक मिलना कठिन है तो उस ने अपने चार साथी भाटों को कहा "आप लोग पाटन को चले जाओ, मैं उस समय तक वहां न जाऊंगा जिस समय मुझे रानक का पता नहीं मिलता अथवा दूसरी पद्मनी स्त्री हाथ नहीं लगती" उन्होंने उस के साथ रहने की इच्छा प्रकट की, परन्तु रणमल ने उन की एक नहीं सुनी, अन्त में यह तो पाटन नगर में चले गए और रणमल ने साधु वेष धारण करके अपना नाम गोपाल दास रखा, और उसी रूप में गुजरात, कच्छ और सिंधु देश

में यात्रा करने का संकल्प किया, उस को आशा थी कि कहीं न कहीं अवश्य हड़मती मिल जायेगा।

जिस समय लाल भाट आदि पाटन पहुंचे, और राजा की सेवा में पहुंचे उन को आकृति देखते ही वह जान गया कि उन को अपने उद्देश्य में सिद्धि नहीं हुई और उसने पूछा "रणमल कहां है? भाट ने उत्तर दिया "उस ने साधु का वेष धारण कर लिया है, देश देश फिरे घूमेगा"।

सिद्धराज—क्यों ?

भाट—हमारी कथा विपत्ति की घटनाओं से भरी हुई है, रणमल हम को कई स्थानों पर ले गया, सोरठ देश के मझ्योड़ी गांव में एक पद्मनी कन्या का पता लगा, उसके लिये हम ने बड़े २ यत्न किये, सब भांति से आशा थी कि उसे हम आप के महल में ले आएंगे, परन्तु सेठ कर्मचन्द टीकम चन्द ने अपनी उतावली से बना बनाया काम बिगाड़ दिया, पद्मनीका पिता भयभीत होगया और वह रातों रात उसे न जाने कहां भगा कर ले गया, हम सब ने बहुत खोज की परन्तु पता नहीं लगा।

सिद्धराज—उस कन्या का रूप रंग कैसा था ?

लाल भाट—चन्द्रमा के मुख मण्डल में तो काले धब्बों का भ्रम होता है वह चन्द्रमा से अधिक रूपवती थी, शिर से पाओं तक वह सौन्दर्य के सांचे में ढली हुई थी, इस से अधिक और क्या बखान किया जाये।

सिद्धराज--किस कुल की कन्या थी ?

चुंच भाट—कुम्हार की।

सिद्धराज—हंसा "बहुत अच्छे, रणमल ने बहुत अच्छा जोड़ा मिलाया था, कुम्हार की पुत्री और पाटन देश की पटरानी हो, पहले भी उस ने मुझे उसका वृत्तान्त सुनाया था

भंगड़—सरकार उसे जब देखते तब कहते, कन्या थी गुलाब का फूल थी।

सिद्धराज—तो भी रणमल कहां चला गया।

चुंच—हम लोग उसे मझ्योड़ी में ही छोड़ आये थे, परन्तु अब वह वहां भी नहीं है

सिद्धराज—उसने चलते समय तुम्हें क्या कहा था ?

लालभाट—उसने यह कहा था कि अब मैं पाटन जाकर किसी को क्या मुख दिखलाऊंगा, महाराज मुझे क्या कहेंगे, और देश वाले क्या कहेंगे, जब तक मैं कहीं से पद्मनी का पता न लाऊंगा तब तक घर की ओर मुख न करूंगा।

सिद्धराज—रणमल सच्चा मनुष्य था, तुम लोगों को भी उसका अनुसरण करना उचित था, पूर्वकाल के भी भाट बात के धनी और सत्यवादी होते थे।

भंगड़—हमारी यह इच्छा थी कि उसके साथ रहें, परन्तु उसने हमको रहने नहीं दिया और फिर सरकार को भी सूचना देनी थी।

सिद्धराज—अच्छी सूचना लाए, इस सूचना की मुझे क्या आवश्यकता थी, तुम चारों मनुष्य एक सप्ताह घर में विश्राम लो, फिर रणमल की खोज में जाओ, ऐसा न हो कि वह हाथ से जाता रहे बड़े काम का मनुष्य है।

भाट—सत वचन।

त्रयोदश परिच्छेद

आश्चर्य्य।

संसार के कारव्यवहार में आश्चर्य्य का होना आवश्यक है।

कई वर्ष व्यतीत हो गए, राखनगार को सम्भव है स्मरण तक न रहा हो कि मभ्योड़ो में उसने किस रूपवती के सौन्दर्य्य में मुग्ध होकर क्या नाटक खेला था, हम नित्य नये नये दृश्य देखते हैं और नित्य उसको भूल जाया करते हैं कोई बड़ी रहस्य वाली घटना अपनी छाया हृदय पर अंकित कर जाती है, स्मृति

और विस्मृत दोनों ही का प्रबन्ध प्रकृति के हाथ में है, जागृत अवस्था की बातें स्वप्न में भूल जाया करती हैं और स्वप्न की घटनाओं का सम्बन्ध जागृत अवस्था में नहीं रहता, परन्तु कोई मनुष्य निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता कि हम सब कुछ भूल ही जाया करते हैं, कई एक बातें मस्तिष्क में रह भी जाती है, स्वप्नावस्था में देखे हुये मनुष्य जब जागृत अवस्था में कहीं दिखाई देते हैं, तो हम उस समय अवश्य विचार में पड़ जाते हैं कि इन को कहीं अवश्य पहले देखा था, उसी प्रकार जागृत अवस्था के भी दृश्य बहुधा स्वप्न में भी प्रत्यक्ष हो जाते हैं और आश्चर्य्य का विषय तो यह है कि कभी २ हर प्रकार की स्वप्न की घटनाएं वारम्बार स्वप्नावस्थाओं में देखी जाती हैं,यह तो बहुत से मनुष्यों का अनुभव है कि बहुता स्मृति और विस्मृति दोनोंही मनके भाव हैं, इनमें बुराई और भलाई दोनों ही छिपी रहती हैं साधु और भक्त क्या करते हैं, ये दुर्गुणों को मन से दूर करते हैं और भलाइयों को जागृत और स्वप्न दोनों ही अवस्थाओं में स्थिर करने का यत्न करते हैं, ध्यान उपासना और विचार इसी का नाम है और वह इसी भाव को अभ्यास द्वारा केवल स्थिर ही नहीं करते वरञ्च अन्य अवस्थाओं में भी दृढ़ रहे ऐसा यत्न करते हुए उस भाव को अपने साथ लेजाते हैं, यहां तक कि सुषुप्ति और तुरीय अवस्था में भी बराबर इसको अपने मनमें रखते है, परन्तु यह अवस्था साधारण जनों की थोड़ी होती है, और

विशेष कर संसार में जो बड़े मनुष्य कहलाते हैं उन को इन अवस्थाओं का लेश तक भी नहीं होता।

राज कार्य्य इस प्रकार के उत्तर दायित्व पूर्ण कार्य्य हैं, कि वह मनको बराबर बदलते रहते हैं, और यही कारण है कि प्रायः अधिकारियों को लोग अस्थिर प्रकृति कहते हैं राखनगार दरबार में बैठाथा, एक मनुष्य सन्मुख लाया गया, प्रणाम करने के पश्चात् उसने एक अंगूठो सन्मुख रख दी, राजा ने अंगूठी पहचानो, परन्तु अंगूठी वाले को बहुत समय तक आश्चर्य्य की दृष्टि से देखता रहा, अन्त में पूछा "तुम कौन हो ? कहां से आये हो ? यह अंगूठी कहां से पाई, यहां आने का क्या प्रयोजन है ?

मनुष्य—श्रीमान ! मैं हड़मती हूँ।

राखनगार—हड़मती ? मैंने कभी यह नाम पहिले अवश्य सुना है, सम्भव है तुम को पहले कहींदेखा भी हो; इस समय स्मरण नहीं होता 'दूध का जला छाछ फूंक फूंक कर पोता है, इस पर तो बज्र गिरा, कहीं प्रारब्ध यहां भी अपना रंग न दिखाए, सम्भल कर कहा "श्रीमान ! यह अंगूठी आपने रानकदेवी को दी थो उसी ने मुझे आप के पास भेजा है, आपने आज्ञा दी थी; कि जब किसी प्रकार की आवश्यता हो इस की सहायता से तू दरबार में आ सकेगी।

राखनगार—रानकदेवी कौन है ?

हड़मती—मेरी पुत्री है।

राखनगार—तुम्हारी पुत्री ?

हड़मती—हां महाराज ! मेरी पुत्री ?

राखनगार—तुम कौन हो ?

हड़मती—कुम्हार ।

राखनगार—मैंने कभी हड़मती की कन्या को अंगूठी नहीं दी थी, उस के देने का कोई कारण भी तो होना चाहिए, सम्भव है मैं भूल गया हूं ।

हड़मती—श्रीमान् जब मभयोड़ो में गए थे, तो रानकदेवी को देखा था उस का वृतान्त पुछा था और यह अगूंठी उसे दी थी ।

राखनगार—बड़े आश्चर्य्य की बात है, वह कन्या कहां है, उसे दरबार में क्यों नहीं लाते ?

हड़मती बाहर गया, रानक देवी को साथ लाया, एक लावण्य और रूप के सांचे में ढली हुई गुलाबी रंग की पुतली सन्मुख आई, नख से सिख तक सुन्दर, मानो लज्जा आप शरीर धारे खड़ी है, भोली भाली आकृति, उसे देख कर सब चकित रह गए, राखनगार ने सौन्दर्य की फुलवाड़ी को इस किञ्चित विकसित अनसूंघी कलि को देखा था अब उस में खिलने वा कुसम का वर्ण वा सौरभ सम्मिल हो गया था, प्रकृति की चित्रकारी की शक्ति ने उस की आकृति की पखड़ियों में ऐसे सौन्दर्य्य का नूतन रंग भर दिया था कि दर्शक की आंख निस्तब्ध हुई उससे परे घटना नहीं चाहती

थी, राखनगार ने इसे देखा, पुरातन बातें धीरे २ उसके मन में आने लगीं वशोल से पूछा "वशील! तुम को स्मरण है कि यह हड़मती कौन है?

वशील—हां! अन्नदाता यह कुम्हार है, मझयोड़ी मेंइस की कन्या भाएडा वरतन लाई थी, क्यों दशील! तुम को कुछ ध्यान है?

दशील—क्यों नहीं, वही रंग, वही रूप, मनुष्य ऐसी आकृति को यदि एक बार देख ले तो फिर आयु भर नहीं भूल सक्ता।

राखनगार—सुन्दरी! तू किस प्रयोजन से जूनागढ़ आई है।

रानक देवी लजा गई अधोमुख होकर उत्तर दिया "श्रीमान की दासी बनने के लिये, जिस समय मैंने आप को देखा था यह प्रण कर लिया था कि या तो श्रीमान के चरणों की सेवा आयु भर करूंगी अथवा संसार को त्याग कर ईश्वर की भक्ति में लीन रहूंगी, श्रीमान ही मेरे ईश्वर भी हैं यदि शारीरिक सेवा का अवसर मिला तो अहोभाग्य; नहीं तो अध्यात्मिक रूप से आप की भावमयी मूर्ति को हृदय में स्थापन करके उस की आरति उतारूंगी।

राखनगार को फिर आश्चर्य्य हुआ, वशील से पूछा तुम समझते हो कि यह क्या कह रही है?

वशील—क्यों नहीं, रूप और शील की दृष्टि से यह किसी राजा के महल की शोभा हो सकती है।

हां कुल के रूप और शील का विचार अवश्य है, दशील ! तुम्हारी क्या सम्मति है ?

दशील—मैंने मझयोड़ी में भी महाराज को कह दिया था, कि धन ,कन्या विद्या और मणि को जहां से वह प्राप्त हो अवश्य लेना चाहिये शास्त्र ऐसा कहते हैं, राजा साहब कदाचित् उन बातों को भूल गये।

राखनगार—सुन्दरी ! तू किस स्थिति से, किस नाम से और किस रूप में मेरी सेवा करना चाहेगी ?

रानकदेवी—लजाई "अपना नाम व चिन्ह मिटा कर आपका नाम लूंगी अपने सुख को इच्छा छोड़ कर आपके सुख का ध्यान रखूंगी अपने आपको भूल कर सर्वदा आपकी स्मृति को नवीन रखूंगी जो आप खिलाएंगे वह खाऊंगी, जिस नाम से आप बुलाएंगे उसी नाम को सुन कर पास दौड़ती आऊंगी चरण दबाऊंगी, सेवा करूंगी आप के चन्द्र मुख को चकोर के समान निहारती रहूंगी, जिस प्रकार कुरूप भ्रमर पुष्प के आस पास मण्डलाते रहते हैं उसी प्रकार मैं भी आप के कमल आनन को शोभा देख कर प्रसन्न रहूंगी, आप की सेवा और संगति को अपना संसार समझूंगी, और मृत्यु के पश्चात् भी मेरे मन की यह आशीश रहेगी कि जब जब नया जन्म हो आप ही की भक्ति मेरे हृदय में स्थिर रहे।

राखनगार—तू तो भक्तिनी है परन्तु शोक ! यदि यही तेरा मनो भाव ईश्वर की ओर लीन होता तो तू संसार में

अत्यन्त सुप्रसिद्ध भक्त होती, मनुष्य की भक्ति क्या होती है, मानुषिक, शारीरिक और पाशविक यह कोई मूल्यवान पदार्थ नहीं हैं ।

हड़मती—श्रीमान्! संसार में जितनी आकृतियां हैं. सब ईश्वर की हैं, जिस को जो आकृति पसन्द आई, वह उसके आकर्षण की कारण होती है, उसी से लोक परलोक की भलाई की आशा की जा सकी है, और ईश्वर उसी रूप से उसका कार्य्य सिद्ध करता है, सारी बात मनकी लगन और हृदय की निर्भरता पर निर्भर है, ईश्वर जिस को जिस रूप से मिला है, इसी संसार से मिला है किसी ने उस को पुत्र के रूप में प्यार किया, किसी ने माता समझ कर पूजा किसी ने पिता को अपना ईश्वर मान लिया, पतिव्रता स्त्री का पति उस का सच्चा ईश्वर है, साधु और फकीर गुरु को अपना ईश्वर समझते हैं, कृष्ण भगवान किसी के मित्र थे किसी के गुरु किसी के सम्बन्धी और सब को उनकी भक्ति का फल मिला, इसी प्रकार यदि आप किसी की दृष्टि में राजा हैं, मित्र हैं, पुत्र हैं तो ऐसे भी तो लोग होंगे जो आप को ईश्वर मानते होंगे भक्ति केवल मानने ही का नाम है और जो लोग इस सिद्धान्त को नहीं समझते, वह आयु भर ईश्वर ईश्वर और राम राम कहते हुये मर जाते हैं उन में न आत्मिकभाव आता है और न भक्ति का फल प्राप्त होता है।

राखनगार—पिता पुत्री दोनों ही भक्ति के रंग में रंगे हुये हैं आज मेरे दरबार में इस प्रकार का व्याख्यान हो रहा

है, जो संसार में कदाचित ही किसी ने सुना होगा, हड़मती ! तुम्हारा विचार ठीक नहीं, मैं देश शासक हूं, मुझे प्रजा का आचार और प्रचलित रीति व प्रथा का पग पग पर ध्यान रहता है, यद्यपि मैं तुम्हारा आदर करता हूं, मैं हृदय से रानकदेवी के रूप और शील की प्रशंसा करता हूं, परन्तु जिस भाव से तुम इसको यहां लाए हो उसका पुरा होना कठिन है।

हड़मती—श्रीमान् ने आज्ञा दी थी कि बिना मेरी आज्ञा के यह कन्या किसी को न दी जावे।

राखनगार—यह सत्य है अब मुझे स्मरण हुआ है, परन्तु सम्भव है मैंने यह बात किसी और भावना से कही होगी, मैं इसका प्रबन्ध करूंगा निश्चिन्त रहो।

हड़मती—परन्तु रानकदेवी और किसी प्रकार भी प्रसन्न न होगी।

राखनगार—वह कन्या है, जो कोई कन्याओं को जिस प्रकार समझावे बुझावे, वह उसी प्रकार की बातें करती हैं, मैं उसे समझा दूंगा और वह प्रसन्न हो जाएगी।

हड़मती—मैं कंगाल मनुष्य हूं, श्रीमान् के वचनों का विरोध नहीं कर सकता, मेरा अपना विचार और प्रकार का था परन्तु रानक सहमत नहीं हैं यहां तक कि उसे सिद्धराज के महल में जाना भी स्वीकार नहीं है, यद्यपि वह स्वयं इसका अभिलाषी हुआ, मुझ पर झगड़ों में बलात्कार और कठोरता का व्यवहार भी किया गया, कन्या की इच्छा न देख

कर मैं रातों रात यहां भाग आया अब इसके भाग्य इसके साथ हैं, माता पिता जन्म के साथी हैं, कर्म्मके साथी नहीं हैं।

राखनगार—क्या यह बात सत्य है, जो तुम कह रहे हो।

हड़मती—हां श्रीमान्! अक्षरशः सत्य है।

राखनगार-यह अन्धेर है, कि सिद्धराज उसके मनुष्य मेरी प्रजा के साथ इस प्रकार का अत्याचार करने का साहस करते हैं, परन्तु मुझे इसकी सूचना क्यों नहीं दी गई।

हड़मती—यह काम उस राजा के मनुष्य गुप्त रूप से कर रहे थे, सेठ कर्मचन्द टीकमचन्द, साधु कृष्णदास और सिद्धराज के रणमल आदि भाटों के बिना और किसी को इस भेद का पता नहीं है, जब मैंने स्वीकार नहीं किया तो वे कठोरता का व्यवहार करने लगे, भयभीत होकर घर बार छोड़ कर यहां चला आया, रानक बेटी तू क्यों नहीं महाराज से अपने भाव को प्रगट करती, यही तो समय है लज्जा किस बात की है?

रानक—मैंने जो कुछ बिनती करनी थी करदी, कन्याओं के लिये अधिक बातचीत करना लज्जा की बात है, भाग्य ने मुझे निर्लज्जता का साहस करने के लिये विवश किया, सिंह की चाल एक होती है महान् पुरुषों का वचन एक होता है, केला एकही बार फलता है राजपूतनी एक ही बार ब्याही जाती है, मैं राजपूतनी हूं अपने आपको क्षत्रिय

वंश से समझती हूं, जो प्रण कर लिया, कर लिया, यदि महाराज मुझे अपनी सेवा में ग्रहण करने अथवा अपनी दासी बनाने को स्वीकार नहीं करते हैं, तो मेरा कोई स्वत्व उन पर नहीं है, जिस प्रकार पार्बती ने कहा था कि "वरहुं शम्भु नहीं रहूं कुंवारी" वही दशा मेरी भी है, यदि वे अङ्गीकार नहीं करते तो जाने दीजिये, मैं किसी बनमें जाकर तप करूंगी उनका नाम लेकर जीऊंगी अथवा मरूंगी, इस जीवन में अब बचन भंग अथवा कुपथ में नहीं चल सकती, जो हृदय ने निश्चय कर लिया, वह निश्चय होगया, आप राजा से आज्ञा लीजिये, घर चले जाइये, मुझे मेरी प्रारब्ध के आश्रित छोड़ दीजिये, जो होना था हो चुका।

राखनगार—सुन्दरी ! तू राजपूतनी है, क्या तु कुम्हार की कन्या नहीं है ?

रानक—आत्मा है, वह शरीर के बन्धन में आकर शारीर कहलाता है, मन के मन्दिर स्थित होने पर मानसिक कहलाने लगता है, मट्टी मन्दिरों की भीत में भी लगाई जाती है, और उससे दूसरे भवन भी बनाये जाते हैं; मट्टी तो वस्तुतः मट्टी ही है, उसकी स्थिति में क्या अनन्तर आता है।

राखनगार—आश्चर्य्य है तू तर्क की बातें करती है, प्रश्न का उत्तर नहीं देती !

रानक—मैं दरिद्री तर्क क्या जानूं, यह शिर विद्यमान है, उसे अपने हाथ से काट दीजिये, इसका यह सब से अधिक

आदर होगा, यदि इस शिर को आपके चरणों में झुकने का अवसर नहीं मिलता, ग्रीवा पर भार है, मैं क्या कहूं, इस से अधिक और कुछ नहीं कह सकी।

राखनगार के मन में रानक के आदर की भावना उत्पन्न हुई, प्रेम से शून्य तो वह नहीं था, केवल साधारण वार्तालाप कर रहा था, उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ, हड़मती से पूछा "यह क्या कह रही है"।

हड़मती—यह सत्य कह रही है, मैंने पहले भी श्रीमान् को इसके जन्म की कथा सुनाई थी, आप भूल गए, यह सिंधु देश की राज कुमारी है, सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य से यह मेरे हाथ लगी है, सन्तान न होने के कारण मैंने इसे पाला, सिंधु से कच्छ में आया, वहां का राजा इसे अपने महल में रखने का लालसी था, मैं भय से भाग आया मझयोड़ी में फिर वैसी ही घटना घटी अब यहां आया हूं, इस की प्रारब्ध मुझे सैंकड़ों प्रकार के नाच नचा रही है देखिये, अब क्या होता है।

राखनगार—हां हां, मुझे स्मरण आ गया निश्चिन्त रहो, यह कन्या बहुमूल रत्न है, क्यों वशील! तुम क्या कहते हो?

वशील—बेशक महाराज घर आई हुई माया का कौन अनादर करता! क्यों दशील तुम मेरे साथ सहमत हो अथवा नहीं।

दशील—मन और प्राण से, हम दोनों महाराज को पहले ही कह चुके हैं।

राखनगार—बहुत अच्छा, हड़मती! रानक को मेरे अर्पन करो, वह मेरी पटरानी होगी, विश्वास रखो, मैं शुभ लगन में उस के साथ विवाह करूंगा, तुम्हारे निवास का प्रबन्ध त्रशील करेगा।

वशील—मैं इन के लिये एक अच्छा घर स्थिर कर दूंगा, क्यों दशील! तुम्हारे ध्यान में कोई अच्छा घर नगर में है, जिस में हड़मती को ठहराया जावे।

वशील—क्यों नहीं, सहस्रों घर मिल सके हैं, सेठ कर्मचन्द टीकमचन्द की कोठी से सटा हुआ एक सुन्दर भवन विद्यमान है।

हड़मती—श्रीमान्! मुझे सोरठ देश से अब चले जाने की आज्ञा प्रदान हो।

राखनगार—यह क्यों?

हड़मती—जिस नगर में कन्या विवाही जावे, माता पिता उस नगर के अन्न जल ग्रहण नहीं करते, सनातन से हम हिन्दुओं की प्रथा चली आई है अब मैं पुनः सिन्धु देश को चला जाऊंगा।

राखनगार ने उसे बहुत कुछ धन सम्पत्ति देनी चाही, परन्तु इस निस्वार्थ और धर्मात्मा सच्चे हिन्दू ने उस से कुछ न लिया और बिदा हो उसी दिन वहां से प्रस्थान किया

और अपने देश में चला गया, इस के पश्चात् उस की क्या अवस्था रही गुजरात का इतिहास पता नहीं देता।

रानकदेवी के साथ राखनगार ने विवाह कर लिया, अब तक वह स्वयं कुंवारा था और विवाह के पश्चात् भी उस ने दूसरी स्त्री का नाम नहीं लिया धर्म पर दृढ़ होने के कारण उस ने एक नारीव्रत के नियम का पालन किया, इस विवाह में पति पत्नि की युगल जोड़ी के आनन्द का पारावार नहीं था, समय पर रानकदेवी के गर्भ से दो पुत्र रत्न उत्पन्न हुए और उस की पति परायणता ने राखनगार की दृष्टि में इसी संसर को स्वर्ग धाम बना दिया।

चतुर्दश परिच्छेद

परिताप ।

"दस्ते हसरत मलते हैं नादान नादानी से सब"

व्यवहार में प्रतिभास में, और परमार्थ में सफलता उनके भाग में आती है जिनके भाग्य अच्छे हैं अथवा जिन के मन में किसी पदार्थ के पाने का दृढ़ सङ्कल्प होता है, जिनके भाव में आनाकानी और उपेक्षा होती है उन के मनोरथ सफलता तक नहीं पहुंचते, यदि किसी साधारण उपासक की दृष्टि शरीर और इन्द्रियों तकही रहती है तो वह आत्मिक आनन्द को क्या पायेगा उपासक को गुरुनिष्ठ होना चाहिये गुरु आत्मिक आदर्श का नाम है, इन्द्रिय, मन और शरीर के समुदाय से गुरू कहना भूल है, एक नये भक्त को सन्तान की ओर से कुछ दुःख हुआ उसने अपने गुरु को लिखा "महाराज यदि आपकी सन्तान पर यह विपत्ति आती तो आपकी सुधि मारी जाती" इस मूर्ख और अनुभवी शिष्य की दृष्टि अब तक ऊंची नहीं हुई, वह आत्मनिष्ठ नहीं है शरीर

निष्ठ है, उसको गुरु से सम्भव है कभी शारीरिक सुख तो प्राप्त होजाये परन्तु आत्मिक सुख की प्राप्ति नहीं होगी, यह परमार्थिक उदाहरण है, इसी प्रकार सांसारिक विषय को समझो यहां प्रत्येक कार्य्य में भाव की दृढ़ता की आवश्यकता है और सफलता व असफलता एक मात्र दृढ़ता पर ही निर्भर है।

सिद्धराज नियम परायण नहीं था, विषय भोग ने उसको अपना दास बनाया हुआ था वह आदर्श स्त्री को किस प्रकार प्राप्त कर सका था यह व्यवहारिक उदाहरण है।

रणमल ने विचार किया कि वह आपने राजा के लिये पद्मनी स्त्री लाए, परन्तु उसके भाव में वह दृढ़ता नहीं थी इस लिये वह सफल काम न हो सका।

परमार्थ आत्मिक प्रकरण है, प्रति मास मनोगत कल्पना है और व्यवहार शारीरिक सम्बन्ध है।

रणमल ने वेष बदल कर सोरठ देश में निरतिश भ्रमण किया उसे उस समय रानक के विवाह का पता लगा जब वह सन्तानवती होचुकी थी, मनमें परिताप और विस्मय के साथ मनमें दुःख हुआ, राखनगार को पद्मनी की इच्छा नहीं थी परन्तु वह उसे मिल गई क्योंकि प्रकृति की दृष्टि उस के धार्मिक जीवन की ओर थी सिद्धराज को सिद्धि नहीं हुई क्योंकि वह मन से न तो उसकी अभिलाषा रखता था, और न ही वह रणमल के कथन पर विश्वास रखता

था, रणमल अपने अर्थ नहीं, बरञ्च दूसरे के लिये केवल सांसारिक लोभ के वश में हुआ, काम कर रहा था, और उसे असफलता होनी ही थी।

पांचो मनुष्यों ने परस्पर सम्मति की और पाटन की ओर वापिस गये, सिद्धराज की सेवा में उपस्थित हुए।

उस ने पूछा "कहो क्या हुआ ?"

रणमल—दशा देश उस पथिक की, रुदन होत लखभाग।
थका पड़ाव समीप आ, चल न सके इकपाग॥

सिद्धराज—क्या बात है ?

रणमल—टूटा कहां भाग का धागा।
रध्यो सजन घर जब दोऊ पागा॥

सिद्धराज—तुम वृत्तान्त सुनाते हो या कवियों की कविता पढ़ते हो।

रणमल—अन्न दाता ! बज्र टूट पड़ा, हाथ में आई हुई पद्मनी निकल गई। आश्चर्य्य और विस्मय मुझे प्राप्त हुआ और निराशा आपको मिली।

सिद्धराज—तुम मूर्ख हो, मैं पहले ही जानता था कि तुम्हारा विचार असत्य है। अस्तु पद्मनी को कौन हर कर ले गया ?

रणमल—राखनगार जूनागढ़ का राजा।

सिद्धराज—क्या उसे पता था कि मैं उस को चाहता हूं।

रणमल—वह सब बातों से परिचित था, राणक पद्मनी के लिये आपकी ओर से सन्देशा दिया गया, उस का पिता पता नहीं क्यों उसे जूनागढ़ भगा ले गया, उस ने आपके पुरुषों की निन्दा की, राखनगार को क्रोध आया, और उस ने स्वयं रानक के साथ विवाह कर लिया, और मेरा सब परिश्रम अकारथ गया।

सिद्धराज का मुख मण्डल क्रोध की अग्नि से लाल हो उठा, हाय राखनगार का यह साहस, कि जो स्त्री मेरे लिये नियत हो चुकी हो, वह उसे हर ले जाए बहुत अच्छा, उस को इस अपराध का फल भोगगा पड़ेगा, जो मैं जूनागढ़ की ईंट से ईंट बजा दूं, तब तो मेरा नाम सिद्धराज है, उस की क्या शक्ति, कि मेरे सन्मुख ठहर सके, उस ने बड़ा निन्दित व्यवहार किया है, और मैं बिना दण्ड दिये न रहूंगा।

रणमल—काम तो उस ने ऐसा ही किया है।

सिद्धराज—क्या उसकी अवस्था कुछ तुम्हें पता है ?

रणमल—मैं सब जानता हूं, वह नीच प्रकृति का तो है नहीं, न्याय और प्रजा पालन में वह देश भर में प्रसिद्ध है, दुखियों पर दया करने वाला, और प्रजा को पुत्र के समान जानने वाला, विद्वानों की प्रतिष्ठा करने वाला है, हां यह भूल उसने अवश्य की है जो क्षमा के योग्य नहीं है।

सिद्धराज—मेरे सन्मुख शत्रु के गुणों को मत बखान करो, मैं तुम से पूछता हूं, कि उस की सेना और कोष की क्या अवस्था है, इस समय मुझे केवल उस की शक्ति का पता लेने का विचार है।

रणमल—उसकी सेना सुसज्जित नहीं है, इस ओर उस ने ध्यान ही नहीं दिया कोष आदि का प्रवन्ध तो सेठ कर्मचन्द टीकमचन्द के किसी सम्बन्धी के हाथ में है, वह उसका खजानची है, कर्मचन्द टीकमचन्द इस कार्य्य में मेरे साथ थे, उसे भी दुःख है, वह सर्वदा श्रीमान की ओर रहेगा हां यदि कुछ भय है तो दयासिंह सेनापति का है, वह राखनगार का कृतज्ञ मित्र है।

सिद्धराज—क्या कोई चतुर मनुष्य राखनगार के दरबार में ऐसा नहीं है जो हमारे पक्ष में हो जाए और सम्पूर्ण भेदों का पता देवे।

रणमल—हां, दो मनुष्य ऐसे हैं, मैं गुप्त रूप से उन्हें मिला था, यद्यपि इस विषय पर कोई विशेष बात नहीं हुई थी, परन्तु श्रीमान ने उन के भूमि प्रदेश ले लिये हैं, उन की इच्छा है कि उन की भूमि किसी प्रकार वापस दी जाए, और यदि इसका लोभ दिया जायेगा तो वे आप के सहायक हो जाएंगे इस में तनक भी सन्देह नहीं है।

सिद्धराज—उन के नाम क्या हैं?

रणमल—वशील और दशील।

सिद्धराज—हां मैं समझ गया, वे मनोल देवो के पुत्र और मेरे सम्बन्धो भी हैं यदि वे मेरे सहायक हो जाएं तो बात ही क्या है।

रणमल—उनको निमेष मात्र में आपका सहायक बना सकता हूं।

सिद्धराज—तो आज तुम विश्राम करो, कल सोरठ देश को चले जाओ जब तुम वहां से पत्र लिखोगे, मैं स्वयं सेना लेकर जूनागढ़ पहुंचूंगा और राखनगार का नाम इस संसार से मिटा दूंगा।

रणमल—सत बचन।

रणमल आशीर्वाद देकर चला गया सिद्धराज एकाएकी बैठा हुआ सोचने लगा, इतनी सुन्दर स्त्री और मुझे न मिले, राखनगार बीच में कूद पड़े और मुझे इतना परि-ताप दे जाए, रानक पद्मनी पर मेरा स्वत्व है, मेरे लिये पहले संदेशा दिया गया, उस को क्या अधिकार था, अस्तु, अब भी मैं उसे अपने महल का भूषण बनाऊंगा, और पद्मनी का पति कहलाऊंगा सिद्धराज को समानता कौन कर सक्ता है, ऐसे सैंकड़ों राखनगारों को मैं धूल में मिला सक्ता हूं——

वह इसी चिन्ता में था कि दरबान ने सूचना दी "माता जी आ रही हैं" सिद्धराज उठा, मां के पाओं पर पड़ा, नेत्रों के पलकों से उस के चरणों की धूलि को पोंछा, और जब माता आ कर बैठी, वह आदर से खड़ा रहा उस की

आज्ञा पाकर तब बैठा, इस देवी का नाम इतिहास में मनील देवी प्रसिद्ध है, यह अत्यन्त, सदाचारिणी, पवित्र और दयालु रानी हुई है ।

मनीलदेवी ने पूछा— आज तुम इस प्रकार व्याकुल से क्यों हो ?

सिद्धराज—कुछ नहीं ।

मनीलदेवी—कुछ तो अवश्य है, नेत्र क्रोध से लाल हैं, होंठ फड़क रहे हैं, हाथ पाओं में असाधारण आवेश दिखाई दे रहा है, मैं तुम्हारी माता हूं, तुम मेरे आज्ञाकारी पुत्र हो, मुझ से अपना भेद क्यों छुपाते हो, क्या तुम नहीं जानते, जब से तुम्हारे पिता की मृत्यु हुई, मैंने तुम्हारी पालना की, अपनी सम्मति और अनेक उपायों से, तुम्हारे राज्य को विस्तृत किया, मैं ही तो सच्चे अर्थों में तुम्हारा मन्त्री हूं. मुझ से तुम क्या छुपाया करते हो ।

सिद्धराज—बहुत सी बातें ऐसी हैं, जिन का कथन माता पिता के सन्मुख उनका अनादर समझा जाता है।

मनीलदेवी—पुत्र बातें न बनाओ, तुम जानते हो, मेरी दृष्टि तुम्हारे प्रत्येक कार्य्य पर रहती है दूसरों की अपेक्षा माता इसे अधिक जानती है ।

सिद्धराज—तुम मुझे धिक्कार फटकार करने आयी हो ?

मनीलदेवी—नहीं तुम को सुपथ पर लाने आई हूं ।

सिद्धराज—(हाथ बांधे) मैं तुम्हारा पुत्र ही नहीं

वरञ्च तुम्हारा भक्त भी हूं क्या मातेश्वरी मुझे अपने निज के कार्य्य में भी स्वतन्त्रता प्रदान नहीं करेगी ?

मनीलदेवी—पुत्र मैं तुम को भली भान्ति जानती हूं, तुम ही मेरे नेत्रों के तारे हो, तुम से अधिक प्रिय मुझे कौन है तुम को मैंने बन्धन में कब रक्खा था, तुम राजा हो, शासक हो, यद्यपि मैं तुम्हारी जननी हूं, तथापि मेरी स्थिति प्रजा की है, मैं तुम्हारी स्वधीनता कैसे हरण कर सकती हूं, यह विचार ठीक नहीं।

सिद्धराज पुनः माता के चरणों पर गिरा उस ने उसे हृदय से लगाया और बोली "पुत्र! किसी किसी समय तू अनुचित कार्य्य करने लगता है तेरे जीवन का प्रकाश मय भाग एक मात्र माता की भक्ति ही है; जब तक मैं जीवित हूं तुझ पर किसी प्रकार की विपत्ति न आने पाएगी, मेरे पश्चात् यदि कुछ होजाए, मेरी आशीश ढाल बन कर तुझे प्रत्येक प्रकार की विपत्ति से रक्षा करेगी।

सिद्धराज—मुझे बस आपकी आशीश की आवश्य-कता है।

मनील—मैं सायं प्रातः भगवान से तेरे मंगल की कामना करती रहती हूँ।

सिद्धराज—इस समय आप किस प्रयोजन से आई हैं?

मनीलदेवी हंसी—क्या अबतक तुझे इस कार्य्य का पता नहीं लगा।

सिद्धराज—नहीं, और यदि है भी तो निश्चयात्मक नहीं।

मनील—जो बातें अभी रणमल ने तुझे कही हैं उन का अक्षरशः मुझे परिचय मिल गया है, और मैं इस अभिप्राय से आई हूं, कि तुझे इस कलह क्लेश के सङ्कल्प से दूर रखूं।

सिद्धराज—हाय! माता! तूने अपने पुत्र के पीछे इस प्रकार जासूस लगा रखे हैं।

मनील—एक मात्र तेरी भलाई के विचार से, और यदि तू मेरे हस्ताक्षेप को पसन्द नहीं करता, तो मुझे आज्ञा दे मैं काशी चली जाऊं, काशी वास करूं और वहीं इस शरीर को छोड़ दूं।

सिद्धराज—नहीं, नहीं मेरा अभिप्राय यह नहीं है।

मनीलदेवी—तो फिर सुन, राखनगार ने कोई अपराध नहीं किया, रानकदेवी वास्तव में पद्मनी है, अब वह तुझे नहीं मिल सकी, उस का हाथ आना असम्भव है, वृथा रक्तपात करने से तेरे हाथ कुछ न आएगा।

सिद्धराज—राज्य का क्षेत्र तो विस्तृत होगा,

मनीलदेवी—परन्तु शरत यह हैकि सच्चाई और न्याय इस भाव के अन्दर हो, नहीं तो विस्तृत राज्य विपत्ति का स्थान होता हैं।

सिद्धराज—शास्त्र कहते हैं, राजा विद्यार्थी और व्यापारी

को कभी सन्तोष करना उचित नहीं, राज्य, विद्या और धन को सदैव उन्नत करने की चेष्टा करते रहना चाहिये, नहीं तो जहां मनुष्य एक स्थान पर संतोष करके स्थिर होगया फिर उसका पतन होना आरम्भ हो जाता है।

मनीलदेवी—परन्तु सदैव इस उन्नति के भाव से विद्यमान रहना चाहिये तब तो कुशल रहता है नहीं तो राज्य विद्या और धन तीनों ही कलंक रूप हो जाते हैं, और इनके कारण मनुष्य सांसारिक विपत्तियों में फंस जाता है।

सिद्धराज—मैंने आज तक पद्मनी नहीं देखी, इस लिये यह विचार है।

मनील—पुत्र! तूने पद्मनी का दर्शन किया है, देख मैं स्वयं पद्मनी हूं, क्या तुझे विश्वास नहीं है?

सिद्धराज—परन्तु मेरे महल में तो पद्मनी नहीं।

मनील—पद्मनी बड़े भाग्य से मिलती है, तू जिस समय सागर (एक सरोवर का नाम) बना रहा था एक मजदूरनी पद्मनी थी वह अत्यन्त सुन्दरी थी, तूने उसको कुदृष्टी से देखा वह तेरे हाथ नहीं आई, तूने उसके निर्दोष स्वामी का बध किया उस मजदूरनी ने तत्काल तेरे देखते २ कलेजे में छुरा भोंक लिया, मर गई और मरते समय शाप दे गईकि इस लम्बे चौड़े सरोवर में जल को एक बिन्दु न ठहरेगी और सिद्धराज के अन्याय और अनर्थ की यह चिरस्मृति

रहेगी, देख लाखों रुपये इस सागर पर लगे और वह अब तक सूखा पड़ा है, क्या अब भी तुझे विश्वास नहीं आया वह स्त्री पद्मनी ही थी।

सिद्धराज—माता ! आशीश और शाप यह पुराने ढकोसले हैं, मैं मानता हूं कि मुझ से अपराध हुआ परन्तु क्या करूं विवश था।

मनील—परन्तु उसी अपराध को तू फिर करने वाला है. छोड़ दे ऐसे विचार को, पर स्त्री पर कुदृष्टि डालने से रावण की सोने की लङ्का भस्म हो गई द्रौपदी का अपमान करने से धृतराष्ट्र के एकसौ एक पुत्र मारे गये, यह शिक्षा है जो मनुष्य इन घटनाओं से सीख सक्ता है।

पर नारी पैनो छुरी, मत कोई करे प्रसङ्ग।
दस मस्तक रावण गए, पर नारी के संग॥
पर नारी पैनी छुरी, समझ न कीजे आस।
गांधारी के वंश का, हो गया सत्यानाश॥

सिद्धराज—मातेश्वरी ! बस, बस और अधिक उपदेश न दो, राज्य का भार क्या थोड़ा है, जो तुम और मेरे दुःखों को बढ़ाती हो।

मनोल देवी—समझाना मेरा कर्तव्य था, मैं इन से अधिक क्या कहूं।

रानी उठ खड़ी हुई, सिद्धराज फिर उनके चरणों पर

गिरा और वह महल में चली गई, और यह फिर उसी चिन्ता में लीन हो गया।

पन्द्रहवां परिच्छेद

आक्रमण।

सिद्धराज अहंकारी और स्वार्थी राजा था, जिस समय उस पर किसी प्रभावना का भूत चढ़ जाता था, वह किसी की भी नहीं सुनता था, मन्त्री और सलाहकार तथा अन्य दरबारी जनों को तो वह तृणके समानभी नहीं मानता था और यही कारण है कि उसके दरबारी जान बूज कर भी उसका विरोध नहीं करते थे उसे किसी पार्थिक तथा दिव्य शक्ति का भय नहीं था, यदि वह किसी की बातों को सुन लिया करता था तो वह एक मात्र उस की माता मनोल देवी थी, माता की भक्ति उसके जीवन का प्रकाशमय अंश था, निस्सन्देह वह भी कुछ २ इस के प्रभाव में रहा करती थी, परन्तु जब कभी माता को अपने विचार के विरुद्ध पाया गुप्त चाल से काम किया, इस कारण, राज्य के साधारण प्रबन्ध से भिन्न वह उस की सम्मति दूसरे

कामों में नहीं लिया करता था इस अवसर पर भी उसने चतुरता से काम लिये, रणमल को रात के समय बुला कर सिखा पढ़ा दिया, राखानगार के मनुष्यों को भ्रमाने लोभ देने और उस निर्दोष के दरबारमें भेद डलवाने की सम्मति दी। रणमल को तो उसने उसी रात्रि में दो चार मनुष्यों के साथ जूनागढ़ भज दिया, और आप भी शिकार के छल से चुने चुने राजपूतों को साथ लेकर दूसरे दिन प्रातःकाल प्रस्थान किया, और सेनापति को आज्ञा दी कि दो चार दिन पश्चात वह बहुत सी सेना सेकर सोरठ की राजधानी की ओर आवे।

यह सिद्धराज का भ्रम था, वास्तव में राखनगार का इस बिषय में कोई अपराध नहीं था, परन्तु किसी के भ्रम को क्या किया जाए, संसार में प्रत्येक रोग की औषधि है परन्तु भ्रम मूलक भाव को कोई औषधि नहीं, सद्भाव भ्रम से भलाई उत्पन्न होती है, यह इतना बुरा नहीं परन्तु दुर्भावना का भ्रम अत्यन्त हानिकारक है, वह पहले स्वयं हानि उठाता है और फिर दूसरों का नाश करता है ऐसा भ्रम पहले उसी मनुष्य के हृदय को अपवित्र और कलुषित कर देता है, नीच मनुष्य पहले स्वयं नीच बन जाता है, तब उसके हृदय से नीचता का स्रोत चलने लगता है और वह कष्ट उस के जल से परिप्लुत हो कर औरों की विपत्ति और कष्ट का कारण बन जाताहै।

रणमलने जूनागढ़ में आते ही वशील और दशील से

भेंट की उन को पट्टी पढ़ा, जाल में फंसाया और जब इस ओर से पूर्ण विश्वास हो गया उस ने सिद्धराज के पास आदमी भेजा, यह घात में लगा था सीमा प्रान्त के निकट शिकार में लगा था, चुने हुए मनुष्यों को साथ लेकर चढ़ दौड़ा।

राखनगार असावधान था। उसे क्या पता कि शिर पर दैवी कोप आ रहा है वह समय ओर भ्रान्ति का था, आज कल के समान राज्य नियम इस प्रकार उन्नत नहीं थे, जासूसी आदि का प्रबन्ध अवश्य था परन्तु अधूरा, और राजा महा-राजे साधारणतया सावधान रहते थे, और इस असावधानता के कारण, अधिक निपुण और चतुर शत्रु उन को सुगमता से अपना शिकार बना लेते थे।

राखनगार को सूचना मिलो कि सिद्धराज के बहुत से मनुष्य जूनागढ़ की ओर आ रहे हैं, उसे विस्मय हुआ, उस ने सेनापति को स्वयं बुला कर सावधान रहने की आज्ञा दी, और क्योंकि उसी दिन उस के जेष्ठ पुत्र को वर्ष गांठ के उत्सव मनाने का दिन था, वह महल के उछाल में मग्न था परन्तु उसे शान्ति कहां, शत्रु के मनुष्यों का इस प्रकार सना-वश्य बिना सूचना दिये देश की सीमा पर दिखाई देना उसके चिन्तित और अशान्त करने के लिये भारी कारण था।

रानक ने पूछा "प्राण पति! ऐसे उत्सव के दिन आप के मुख मण्डल पर अशान्ति और दुःख के चिह्न क्यों दिखाई देते हैं?"

राखनगार—ने कहा "पता नहीं सिद्धराज के मनुष्यों ने बड़े समारोह के साथ क्यों जूनागढ़ की ओर आने का सङ्कल्प किया है। इस समाचार ने मुझे व्याकुल कर रखा है।

रानक देवी के कान खड़े हो गए, उस को राखनगार की रानी बनने से पहले मभयोड़ी की घटना स्मरण हुई, अब वह राखनगार की पत्नि हो चुकी थी परन्तु इस समाचार ने उसे विस्मित कर दिया, मनुष्य भला चंगा बैठा हुआ है, कभी कभी स्वयमेव उसके मन में चिन्ता और शोक के विचार उठने लगते हैं और वह दुःखी हो जाता है, पहिले किसी और के मन में शोक और चिन्ता की कल्पनाएं उठती हैं और क्यों कि उस का मन उस दूसरे चिन्ता युक्त मन से समानता रखता है, सजातीयता के नियम के अनुसार जो विचार तरङ्ग उधर से चलती है, एकाएक स्वस्थ अवस्था को पाकर उस के हृदय की ओर झुकती है, और उसे अशान्त कर देती है यह प्रकृति का नियम है, बुरे और भले भाव दोनों ही पहले किसी के मन से निकल कर सब से पूर्व आकाश मण्डल में विस्तृत होते हैं और फिर कम्पित शब्द लहरी के साथ उन के मनों में प्रवेश करने का चेष्टा करते हैं जो कल्पना करने वाले मन के समान कल्पना वा भाव रखते हों, दूसरा कारण यह है, कि जब किसी मनुष्य के प्रतिकूल कोई विपत्ति की घटना होने वाली होती है, वह कल्पना के रूप में उसकी ओर पग बढ़ाता है, और उसके अदृश्य प्रभाव से यह भय भीत हो जाता है,

यह दशा बहुत से मनुष्यों के ऊपर घटती है और प्रायः पहले ही अनेक मनुष्यों को इस की सूचना मिल जाती है, यह प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य का अनुभव है ।

रानक—महाराज! बात तो अवश्य चिन्ता ही की है आपने इस का क्या प्रबन्ध किया है।

राखनगार—मैंने सेनापति को सावधान रहने को आज्ञा दो है।

रानक—सावधान ही पर्याप्त नहीं हैं, आप अपनी सेना को शस्त्र अस्त्र से सज्जित रहने की आज्ञा दीजिये, कौन जाने इस के अन्दर क्या भेद छुपा हुआ है, आप की प्रजा राजभक्त है प्राण निछावर करने वाली है, सब आन की आने में एकत्रित हो जाएंगे, और अपनी राज भक्ति का प्रमाण देंगे।

वशील—महाराज! आप का विचार असत्य है, रण मल भाट मुझ से मिला था, कहता था सिद्धराज शिकार के प्रयोजन से सोमा प्रांत के वनों में आने वाला है, और कोई बात नहीं है निश्चिन्त रहिये, क्या दशील! तुमक्या कहते हो?

दशील—सत्यबात है, यह साधारण घटना है, इस में वस्मित होने की क्या बात है, यदि सिद्धराज का दुष्ट भाव होता, तो क्या हमारे जासूस पाटन में नहीं हैं, हम को सूचना न मिलती।

मनील देवी—(वशील दशील की माता और राखनगार की भगिनी) नहीं भाई नहीं तुम अवश्य बुद्धिमत्ता से काम लो

असावधानता में न रहो, चाहे यह साधारण बात क्यों न हो, तथापि राजा को सावधान और सज्जित रहना उचित है, सिद्धराज ने इसी प्रकार छल से मेरे पति को मार दिया, पिता पितामह का देश छीन लिया, और यदि तुम न होते तो आज मैं कहीं की न होती तुम मेरे प्राण और मान की शरण हो यह बालक मूर्ख हैं तुम इन की बातों पर न जाओ।

राखनगार—बहन ! तुम्हारा विचार सत्य है, मेरा मन स्वयं मुझे सावधान रहने की प्रेरणा कर रहा है, मैं कल प्रातःकाल ही सोरठ देश की प्रजा को जूनागढ़ में एकत्रित होने की आज्ञा दूंगा।

वशील—निःसन्देह, सावधानी आवश्यक है परन्तु आज उत्सव का दिन है, रंग में क्यों भंग डाला जाए। कल प्रातः काल देखा जाएगा स्वयं स्थान २ पर कर्मचारी भेजकर सर्दारों को बुला भेजूंगा। दशील—तुम क्या कहते हो?

दशील—जो तुम्हारी सम्मति है वही मेरी भी सम्मति है, कल प्रातः काल प्रबन्ध कर लिया जावेगा।

मनील देवी—महाराज ! आप इसी समय जो कार्य्य उचित है कीजिये कल का क्या विश्वास है, और नहीं तो दुर्ग को सुरक्षित कीजिये नगर के कोट की प्राचीरों पर सिपाहियों को नियुक्त कीजिये जिस से यदि शत्रु की भावना में विकार हो तो उसे प्रविष्ट होने का अवसर न हो, और

रातों रात तुरन्त जो कुछ करना है कर डालिये मुझे कपटी सिद्धराज का तनक भी विश्वास नहीं वह इसी प्रकार छल से काम किया करता है, उस ने आज तक कोई धर्म्म युद्ध नहीं किया, उसने जितने राजाओं के देश छीने हैं इसी प्रकार छीने हैं वह धर्म्मात्मा नहीं है, पहले वह लोभ देकर राजपुरुषों को अपने पक्ष में मिला लेता है, फिर उन्हीं की सहायता से उन्हें निर्बल कर के कार्य्य सिद्ध कर लेता है।

राखनगार—सत्य है, मैं उसे भली भान्ति जानता हूं।

रानक—तो फिर विलम्ब न करें, अभी समय है अनुभव से लाभ उठाइये इस उत्सव को विसर्जन करें।

सेठ धर्मचंद टीकमचंद—श्रीमान्! आप बहुत चिन्ता न करें, आप का कोष भरा हुआ है, कल प्रातःकाल अगणित मनुष्य एकत्रित हो जाएंगे सिद्धराज किसी प्रकार भी हमारे देश में प्रवेश नहीं पा सक्ता, फिर भी वह राजा है, बिना विचारे कोई कार्य्य नहीं करेगा, उस के सीमा पर आने का कोई और कारण होगा, आप भी तो अपने देश में भ्रमण करते ही रहते हैं, क्या आप अपनी सीमा पर कभी नहीं जाते, मुझे तो कोई विस्मय का हेतु दिखाई नहीं देता।

राखनगार—शोक! कहां यह आनन्द का समय, और कहां यह चिंता और दुःख, दीवान जो! आप की क्या सम्मति है?

प्रधान मंत्री—मैं स्वयम् आश्चर्य्य में हूं, मुझे दाल में

काला दिखाई पड़ता है, मेरी बुद्धि में स्वयम् यह बात नहीं आती, कि सिद्धराज के आगमन की सूचना पहले हमारे कर्म्मचारियों ने क्यों नहीं दी, मैं मनील देवी के कथन का समर्थन करता हूं आप तो उत्सव मनाइये, मुझे जाने दीजिये स्वयम् अपने पुत्रों को और सेनापति को राज दुर्ग की रक्षा के लिये नियुक्त करता हूं, मैं रात्री भर जागता रहूंगा और कल प्रातःकाल सेना को सज्जित करने का प्रबन्ध करूंगा।

वशील—क्यों न हो, धन्य है आप दीवान साहिब! और धन्य आप की राज भक्ति को' क्यों दशील! दीवान जी से बढ़ कर हमारे महाराज का भक्त कौन हो सक्ता है।

दशील—क्यों न हो, जिस राजा के पास ऐसे मनुष्य विद्यमान हैं उस के भाग्य पर देवता भी ईर्षा करते हैं।

राखनगार—दीवान जी! आप जाइये, तुरन्त दुर्ग का प्रबन्ध कीजिये मैं स्वयम् अभी आता हूं।

वशील—अन्न दाता! आप यहां ही पधारिये, आप पर प्राण निछावर करने वाले क्या थोड़े हैं? जहां आप का पसीना गिरेगा वे वहां अपना रक्त गिराएंगे आप वर्ष गांठ का उत्सव मनाईये, हम दोनों जाते हैं, क्या दशील! क्या कहते हैं।

दशील—ऐसे भयंकर समय में हमारा आनन्द मनाना व्यर्थ है, "जिस की खाईये उसी को गाईये, ।

मनीलदेवी—हां पुत्रो! अभी तो राजभक्ति दिखलाने का समय है; राखनगार तुम्हारे मामा ही नहीं हैं, अन्नदाता,

प्राण दाता, राजा और शरण हैं, यही सच्चे अर्थों में तुम्हारे पिता हैं, जाओ अपनी भक्ति का प्रमाण दो।

वशील दशील भी राजा से विदा होकर जाने को तैयार हो गये परन्तु किसी और भाव से, इन दोनों भाइयों और खजानची धर्मचन्द टीकमचन्द ने पहरा वाले सन्तरी आदियों को, बहुत सी शराब पिला दी थी उत्सव का दिन था, सब दुर्ग के सिपाही शराब पी पी कर उन्मत्त हो रहे थे, अभी दीवान अपने घर जाकर सेनापति और अपने पुत्रों को दुर्ग रक्षा की सम्मति दे रहा था कि यह फाटक तक पहुंचे, सन्तरी ने हांक लगाई, इन्होंने उत्तर दिया "हम हैं बाहर किसी कार्य्य वश जा रहे हैं, सन्तरी को विश्वास हो गया, वह स्वयं मद में उन्मत्त था, इतने में बाहर से किसी ने सीटी दी इन्होंने फाटक खोल दिया सिद्धराज अपने साथियों सहित निर्विघ्नता से अन्दर प्रवेश कर गया, सिपाहियों को एक २ कर के तलवार के घाट उतारा, यह पहले ही से स्थिर हो चुका था कि सीटी के सुनते ही दुर्ग का फाटक खोल दिया जाएगा। जब पाटन देश के शस्त्र सज्जित सिपाही दुर्ग के अन्दर प्रवेश कर गए उन्होंने दुर्ग की सम्पूर्ण सेना को मार दिया रक्त कीनदियां बह निकलीं, सब असावधानी से मारे गये राखनगार अभी उत्सव मना रहा था कि दशील वशील हांपते कांपते आन पहुंचे, "श्रीमान सिद्धराज आ गया, दुर्ग पर उसके मनुष्यों का अधिकार हो गया, अब भागने का अवसर नहीं रहा" उत्सव का रंग राग

इस समाचार के सुनते ही अस्टा थस्टा हो गया राखनगार हाथ में तलवार लिये उठा, दरबारी राजपूत भी संभले इसी अन्तर में सिद्धराज भी वहां आ पहुंचा स्त्रियें मूर्छित हो गईं सिद्धराज ललकारा ! राखनगार ! तुझ को यह साहस कैसे हुआ कि मेरी पद्मनी को भगा लाए, संभल जा मैं बदला लेने के लिये यम के समान आ पहुंचा" राखनगार को आश्चर्य था उसने उत्तर दिया "तू झूठ कहता है, राखनगार को संसार अधर्मी नहीं कह सकता' परन्तु इस उत्तर को कौन सुनता था सिद्धराज ने वार कर ही दिया दोनों में खटाखट तलवारें चलने लगीं, राजपूतों ने भी आक्रमण कर दिया, दोनों दलों के मनुष्य सिंहों के समान युद्ध करने लगे, राखनगार मारा गया उसके सब मनुष्य धराशायी हुए निःसहाय स्त्रियें खड़ी हुईं इस शोकमय दृश्य को देख रहीं थीं, वशील दशील आये और संकेत से सिद्धराज और उसके सैनिकों को कहा बस बस, अब अधिक रक्तपात करने की आवश्यकता नहीं है, और वे चुपचाप खड़े होगए।

सोलहवां परिच्छेद

पतिव्रत धर्म्म

दशीलने रानककी ओर मुख किया "मामी ! मामा तो मर गए, वस्तुतः सिद्धराज ही की रानी होने के लिये तेरा विचार किया गया था धोखा हो गया, अब सन्तोष कर, क्या वशील ! क्या सम्मति है ?"

वशील— यही, कि जिस की वस्तु है उसी को प्राप्त हो।

रानक—अरे कायर ! दुष्ट अधर्मी ! तुमको राखनगार ने क्या इसी दिन के लिये पाला था और उस ने एक मृत राजपूत सिपाही की ख़ञ्जर उठाली, और सिद्धराज की ओर लपकी, दशील, वशील दोनों ने बल से उस के हाथ से ख़ञ्जर को खींच लिया, और उस अबला की मुश्कें कस दीं वह कोमलाङ्गी स्त्री थी, विवश हो गई, रानक के दोनों पुत्र यद्यपि छोटे थे परन्तु माता पिता की मृत्यु और अपमान को सहन न कर सके, एक तो वशील दशील की ओर झुका दूसरे ने सिद्धराज पर आक्रमण किया, परन्तु निर्दयी नीच

हृदय सिद्धराज ने तत्काल उन दोनों का विनाश कर दिया, पति मारा गया, सन्तान उसके नेत्रों के सन्मुख विवशता और बालपन की दशा में मारी गई, रानक के दुख का कौन अनुमान लगा सकता है।

उसने भान्जों से कहा "नीच कायरो ! परमेश्वर तुम्हें इस विश्वास घात का दण्ड देगा।

दशील—मामी ! चिन्ता न कर, तू पाटन देश की पटरानी होगी हम को हमारा देश मिल जाएगा, यद्यपि यह घटना अत्यन्त शोकमयी है, परन्तु इस में सब की भलाइ है यदि एक की बुराई से सब की भलाई होती है, तो बुद्धिमान इस बुराई से झिझकते नहीं।

क्यों वशील ! सत्य है वा नहीं।

वशील—अक्षर अक्षर सत्य है।

मनील देवी—खड़ी हुई आश्चर्य और विस्मय से इन की बातें सुनती रही, उस के पाओं पृथ्वी में गड़ गए थे, उसे निश्चय हो गया कि घटना के मूल ही मेरे दोनों पुत्र हैं उस ने इन से कहा—

"ओह नीच सन्तान ? तुम मेरी कोख से सर्प उत्पन्न हुए।"

वशील—नहीं माता ! नहीं, हम ने पिता की सम्पत्ति प्राप्त करली, क्या सिद्धराज हमारे सम्बन्धी नहीं हैं, क्षत्रिय सदा से छल बल कर के अपना कार्य्य सिद्ध करने में प्रसिद्ध

हैं, आदि से ही ऐसा चला आया है, कुछ हम ने ही तो ऐसा काम नहीं किया क्यों दशील ! सत्य है ना ।

दशील—माता की बुद्धि मारी गई है, उसको ज्ञान नहीं है।

मनील—जिस स्त्री के पुत्र ऐसे नीच प्रमाणित हों उस की बुद्धि क्यों न मारी जाए, शठो ! तुम्हारे लोक परलोक दोनों भ्रष्ट हुए तुम कुपूत हो तुम्हारे संसार में जन्म लेने की क्या आवश्यकता थी।

वशील—इस लिए, कि पिता की नष्ट हुई भूमि को चतुरता से वापस ले लें, क्यों दशील ! बोलते क्यों नहीं ।

दशील—निस्सन्देह, सत्य है।

मनील—धिक्कार है इस सम्पत्ति पर, जिस का मूल्य हत्या हो धिक्कार है उन सम्पत्ति वालों पर जो अपने पिता के समान रक्षक के प्राण ले कर सम्पत्ति वाले बनें, धिक्कार है तुम पर जो ऐसे धर्मात्मा स्वामी के रक्त के प्यासे बने, और धिक्कार है मुझ पर जिस की कोख से तुम से विश्वास घातियों ने जन्म लिया, कोटि कोटि वर्ष तक तुम घोर नर्क में पड़े रहोगे—और इस निर्दोष की हत्या तुम्हारे माथे पर कलंक का टीका बना हुआ तुम को धिक्कार देता रहेगा।

वशील—साधारण बात ! हमें इन बातों का क्या भय है हम सिद्धराज के तो प्यारे बने रहेंगे, क्यों दशील ! जिस

पर ऐसा महाराजा दयालु हो, उस को और किसी का क्या भय है।

दशील—सत्य है, यह सत्य है।

मनील—कुलद्रोही, कुलघातक, निर्लज, नीच तेरे अन्न दाता की मृत्यु देह तेरे सामने पड़ी हुई है, और यह ढिठाई यह वयात्य, यह अपमान और अनर्थ की बात कह रहे हो, दूर हटो नहीं तो मैं स्वयं तलवार से चूहे की न्याईं तुम्हारे शिर उड़ा दूंगा।

वशील—तू सब भूल जाएगी, चल रानी बन कर अपना राज्य सम्भाल ले, संसार में ऐसा होता ही रहता है, क्या दशील! पच्चीस गांव राजा और देगा वा नहीं?

दशील—हां जी हां अपने स्वार्थ के अर्थ कौन नहीं ऐसा करता।

मनील को अधिक सुनने का धैर्य्य कहां था उस ने लपक कर तलवार उठाई वशील दशील दोनों भागे, सिद्धराज के पीछे जा छुपे, मनील देवी ने खंजर अपने हृदय में घोंप लिया और वहां ही ढेर हो गई।

वशील—हाय हाय, मातेश्वरी ने आत्मघात कर लिया, इस आत्महत्या की क्या आवश्यकता थी, दशील! अब क्या करें?

दशील—लाश उठा ले चलो, मृतक संस्कार करो और अब क्या करना है।

सिद्धराज इन निर्लज्ज मूर्खों की बातें आश्चर्य हुआ सुनता रहा परन्तु चुप था, मुख नहीं खोला, वे लाश को एक ओर उठा ले गए।

सिद्धराज रानक की ओर झुका "सुन्दरी ! मैं निरपराध हूं, तेरे प्रेम ने मुझे बावला कर दिया था, तू मेरी थी और मेरी होगी, देख कितने प्राणों से अधिक प्यारे जीवन देकर मैंने तुझे मोल लिया है।

रानक—बस, बस, घाव पर निमक मत लगा, इस दुष्ट भावना से दूर रह और मेरी दृष्टि से ओझल होजा, मैंने क्या जाने पूर्व जन्म में कैसे कर्म किये थे कि पति के घातक को इन आंखों से देख रही हूं और तेरी अपवित्र बातें कानों से सुन रही हूं मुझे पहले ही मर जाना था, जिससे अपने सुहाग का डब्बा हाथों में लिये हुए पति के हाथ से दग्ध होने का पुण्य प्राप्त करती, परे हट जा।

सिद्धराज—राजपूतो ! पद्मनी की मुश्कें खोल दो, इसे कष्ट होता होगा अभी यह चेतना में नहीं है, समझाने पर समझ जाएगी, परन्तु अपने पहरा में रखो कोई अनुचित कार्य न करने पावे।

और राजपूतो ने वैसा ही किया।

सताहरवां परिच्छेद ।

ईश्वर की महिमा ।

दुर्ग में थोड़े समय में अधिकार हो गया सिद्धराज के अफसरों ने अपने सैनिकों को दुर्ग के फाटक और प्राचीर पर नियुक्तकर दिया अभी अर्ध रात्रि से अधिक नहीं व्यतीत हुई थी, पाठकों को इस घटना के पढ़ने से आश्चर्य्य होगा कि किस प्रकार दो चार घण्टों के अन्दर एक बड़े राज्यकी इति श्री हो गई और वह एक शासक के हाथ से निकल दूसरे के अधिकार में चली गई, इस प्रकार की घटनाएं इसी भारत-वर्ष में अनेक बार हो चुकी हैं, मनुष्य प्रायः अपनी असावधानी से मारा जाता है, राखनगार धर्म्मात्मा नरेश था उसे अपनी भलाइयों पर अभिमान था, वह प्रत्येक दशा में अपने आपको सुरक्षित समझता था परन्तु राजा के लिये भलाई के साथ अन्य गुणों की भी आवश्यकता है जिस प्रकार राजयोगी कर्म्म करता हुआ अपनी इन्द्रियों के प्रत्येक विषय का निग्रह करते रहते हैं, वैसे ही राजा का भी धर्म्म है कि वह अपने धर्म्म

और कर्त्तव्य पथ पर चलता हुआ अपने देश के समग्र मनुष्यों का ध्यान रखे और समयोचित निग्रह करता रहे जिस से कोई मनुष्य उस को धोखा न दे सके, योग का साधन महा कठिन काम है परन्तु उससे कठिनतर कर्त्तव्य शासन करने का है, जब तक योगी विषयों की प्रबलता को पूर्णतया दमन न कर ले प्रत्येक पल उस के पतन का भय रहता है, इसी प्रकार राजा, मनुष्य को पहिचानने वाला, अनुभवी और अपनी प्रजा की सेवा और उन के किये हुए उपकारों को तथा उन के अंतरिक भावों को जानने वाला यदि नहीं है तो उसका भी कुशल नहीं है, राजा का सच पूछो तो कोई भी मित्र, सम्बन्धी वा सहायक नहीं है वह सब को अपने सुख व आवश्यकता का साधन बना रखता है, यहां राखनगार ने दशील और वशील के सम्बन्ध में अत्यन्त भूल की, असावधानी की और मारा गया "घर का भेदी लङ्का ढावे" उस की भी सोने की लंका डेर में मिल गई और किस सुविधा के साथ, दीवान सेनापतिको लिये हुये सौपचास मनुष्यों को साथ लेकर दुर्ग के फाटक पर पहुंचा, पुकारा, परन्तु किसी ने द्वार नहीं खोला, प्राचीर पर सिद्धराज के सैनिक उस को देख रहे थे, आज्ञा थी कि प्रातः काल से पहिले फाटक न खुले और न बाहर वालों को समाचार मिले, कि अन्दर क्या हो रहा है, यह सब विस्मित थे, कोई बात समझ में नहीं आई, निराश हो उन्होंने फाटक ही के बाहर रात्रि व्यतीत करने का विचार

किया राखनगार के कर्मचारी सम्भव नहीं था कि उन की न सुनते, नगर में डाका पड़ता है, और कोलाहल मच जाता है, डाकू बाजे बजाते आते हैं और लूट मार कर चले जाते हैं, परन्तु यहां अद्‌भुत रीति की चाल चली गई, शत्रु अपने सैनिकों को गुप्त रूप से लाया, सामना करने वालों को तलवार के घाट उतारा और बाहर किसी कान तक यह सूचना नहीं मिली।

वे मन में अत्यन्त आतुर थे, परमेश्वर जाने क्या भेद है कि कुछ बुद्धि में नहीं आता वह इसी चिन्ता में थे कि कई सौ अश्वारोही सिपाही नगर के कोट से चलता हुआ दुर्ग के पास आया पहरे वाले वहां भी शराब पी पी कर उन्मत्त होरहे थे, जिस समय वशील दशील ने सिद्धराज के सैनिकों को नगर के कोट के अन्दर प्रवेश करने की आज्ञा दी ऐसा जान पड़ता है कि वह नगर का द्वार खुले का खुला ही छोड़ा गया और शत्रु निर्भय हो कर अन्दर आ गया, जब दीवान और सेनापति ने उनके आने की आहट पाई पूछा "कौन आ रहा है ? उत्तर दिया गया" सिद्धराज की खोज में महारानी मनील देवी थोड़े मनुष्यों के साथ आई हैं, उनको सूचना दी गई है, वे-महाराज राखनगार जी के दुर्ग की ओर गए हैं इस कारण महाराणी भी इधर ही आगई फिर प्रश्न किया गया "नगर के कोट का द्वार किसने खोला ?

उत्तर दिया गया 'किसी ने भी नहीं, वह खुला हुआ था, पहरे पर एक भी कर्मचारी नहीं था।

दीवान और सेनापति पर मानों बज्र गिरा, यह सम्मिति की कि रानी को मिलना चाहिये, वह अपने समय बहुत ही धर्मात्मा, ईश्वर भक्त और दयालु विख्यात थी, दोनों आए रानी के सम्मुख खड़े हुये प्रणाम किया अपना नाम बताया, अतिथि धर्म के पूरा करने का संकल्प प्रगट किया।

रानी ने कहा "मैं तुम्हारे सद्व्यवहार और सदाचार को देखकर बहुत प्रसन्न हूं परन्तु सब से पहले मुझे यह बताया जाय कि सिद्धराज कहां है।

दीवान—इस का हम को कुछ भी ज्ञान नहीं है, आज सायंकाल यह सूचना मिली थी कि वे शिकार खेलने सीमा पर आए हैं।

रानी—रात्रि का समय है, तुम दुर्ग के बाहर क्यों खड़े हो और नगर की रक्षा का ध्यान क्यों नहीं रखा गया?

दीवान और सेनापति एक दूसरे का मुख तकने लगे, इस प्रश्न का क्या उत्तर देते वह स्वयं विस्मित थे।

रानी बोली—तुमको पता नहीं मुझे विश्वास है कि सिद्धराज इस समय दुर्ग के अन्दर है, तुम्हारी असावधानता क्षमा के योग्य नहीं भलाई इस में है कि तुम मुझे मेरे पुत्र से अभी मिलने दो, जो समय बीत रहा है वह तुम्हारे और मेरे

लिये अधिक शोक का कारण होगा, अच्छा हो जो मैं उससे मिल कर दो दो बातें करलूं, नहीं तो मेरा आना सर्वथा निष्फल होगा अभी तो कुशल है।

दीवान और सेनापति आश्चर्य्य से चुप थे उनके मन में नानाप्रकार की कल्पनाएं उठने लगीं, बात बनाकर बोले आप अतिथि भवन में पधारें प्रातःकाल सब पता मिल जाएगा।

अब महारानी स्वयं आतुर हुई "जब तक मुझे सिद्धराज का पता न मिल जाये मैं तुम्हारी अतिथि सेवा को स्वीकार नहीं करूंगी यद्यपि तुम्हारे हृदयसे तुम्हारे सद्व्यवहार की अनुगृहीत हूं, अच्छा हो यदि इसी खुले मैदान में हम लोग कुछ समय ठहरें, तुम दुर्ग वालों से पता लो इस के पश्चात आप जो कुछ चाहेंगे मैं स्वीकार करूंगी।

परन्तु दुर्ग को कौन खोलता, वहां तो कुछ और ही प्रबन्ध हुआ २ था रात जिस किस प्रकार व्यतीत हुई ब्रह्म मुहूर्त्त हुआ, इस समय दुर्ग के बुर्ज पर सहनाई और नफीरी बजाने की प्रथा थी, परन्तु वहां मौन था, यह भी सब के लिये विस्मय का कारण था, अस्तु, प्रातःकाल हो गया, अब तक भी फाटक नहीं खुला, दीवान और सेनापति दोनों ने उस के खोलने की चेष्टा की, बुर्ज के मनुष्यों ने ऊपर से उत्तर दिया, "दुर्ग महाराज सिद्धराज के अधिकार में आ गया जब तक पाटन देश की सेना न आ जाएगी दुर्ग इसी

प्रकार बन्द रहेगा" उपद्रव हो गया, सेनापति ने अपनी सेना को सज्जित होने का संकेत किया रानी ने सारी घटना का पता पा लिया, दीवान और सेनापति को बुला भेजा "अब तुम्हारा सारा करना धरना व्यर्थ है, जिस दुर्घटना से मैं तुम को बचाने आई थी वह हो चुकी, शोक ! मैं समय पर न पहुंची, इस समय तुम्हारा चुप रहना अच्छा है अब कुशल इसी में है कि चुपचाप आने वाली विपत्ति को प्रगट होने दो, इस के पश्चात समाचार मिला कि पाटनदेश की सेना आ गई है दुर्ग के मनुष्य प्रतीक्षा में थे, फाटक खुल गया और दीवान और सेनापति को सिद्धराज के सैनिकों ने घेर लिया, रानी ने बड़ी चतुरता से काम किया, रक्तपात तक दशा न आई, और नगर भर में ढिंढोरा फिर गया कि सोरठ देश आज से सिद्धराज के आधीन हो गया जो मनुष्य विद्रोह करेगा, मृत्यु दण्ड प्राप्त करेगा। होगा

किसी की शक्ति थी कि चूं तक करता, नगर पर निराशा और विस्मय छा गया, दुर्ग पर सिद्धराज की ध्वजा फहराने लगी, जब उस ने सुना कि मनीलदेवी आई है, अपने कर्म्मचारियों के साथ बाहर आया, अपनी प्रकृति के अनुसार माता के चरणों पर शीश निवाया।

उस ने पूछा "सिद्धराज ! यह तुमने क्या किया ?

सिद्धराज—जो राजाओं की रीति है।

रानी—राखनगार की क्या दशा है ?

सिद्धराज—वह मर गया।

फिर रानी, राखनगार के मंत्री, सेनापति और दरबारी गण पाटनदेश की सेना सहित सब दुर्ग के अन्दर प्रविष्ट हुए, यहां लाशों के अम्बार लगे हुए थे, कुछ मनुष्य बंदी घरमें पड़े हुए थे, शेष सैनिकों के शस्त्र छीन लिये गये थे, राजा ने दीवान आदियों को आज्ञा दी "शस्त्र रख दो" उन्होंने ऐसा ही किया विचारे विवश थे क्या करते, परन्तु दोनों ही राखनगार के सच्चे भक्त थे प्रार्थना की "हम को यहां से चले जाने की आज्ञा प्राप्त हो"

सिद्धराज—क्यों ? मैं तुम्हारे स्वत्व को सुरक्षित रखूंगा।

मंत्री—जब राखनगार नहीं तो यहां का अन्न जल हमारे लिये शपथ है अब साधु वेष में बन में जाकर तप करते हुये अपना जीवन व्यतीत करेंगे, हम आप के साथ विद्रोह करना नहीं चाहते क्योंकि वह व्यर्थ है।

सिद्धराज—पूर्ण रीति से अधिकार होजाने पर तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार हो सक्ती है, इस समय तुम बंदी हो।

इस के अन्तर लाशों को दूर करने की आज्ञा दी गई और सब के पश्चात राखनगार की अर्थी आदर प्रतिष्ठा के साथ बाहर निकाली गई, सिद्धराज के सैनिक अफसर उस के साथ थे, उसे वे नदी के तट पर ले गए, और विचार था कि कोई न कोई उस का सम्बन्धी उस को चिता पर मृतक संस्कार करने के लिये विद्यमान हो, परन्तु ये सब

भयभीत हुए पहले ही भाग गये थे, इस कारण कुछ समय के लिये संस्कार रोक दिया गया।

यह प्रभु की महिमा है, बड़े २ मुकुटधारी भूपालों की संसार में यह गति होती है, कल जो देश का स्वामी माना जाता था, आज मट्टी और रक्त में लत पत है और उस की सम्पत्ति वा कोष का स्वामी दूसरा हो गया है।

पातारू महीप मान धातारू दिलीप जैसे, जाके
यश अजहूं लौं द्वीप द्वीप छाए हैं। बली ऐसो बलवान
को भयो जहान बीच रावण समान को प्रतापी जग
जग जाए हैं। बान की कलान में सुजान द्रोण पारथ से
जागे गुण दीनद्याल भारत में गाए हैं॥ कैसे कैसे
शूर रचे चातुर विरञ्च जूने, फेर चकचूर कर धूर में
मिलाए हैं॥

अठाहरवां परिच्छेद

उन्मत्तता

निकल भागी, कारागार से निकल भागी, सशस्त्र सिपाहियों के पहरे से निकल भागी, कौन ! रानकदेवी, निकल भागी बन्दी गृह से निकल गई, बुद्धि व ज्ञान नष्ट हो गया, तन मन की सुधि नहीं रही, सर्वथा ज्ञान शून्य, न शिर का ज्ञान न पाओं की सुधि, लज्जा हीन, वह किसी प्रकार सब के नेत्रों में धूलि डाल कर चली गई, किसी को क्या पता।

दुर्ग को देखा उदासी छाई हुई थी, चारों ओर लाशों के अम्बार लगे हुए थे ठोकर खा कर गिर गई।

पग धरते असगुण भयो, पग में लागी ठेस।
रानक को दुःख है बड़ा, उजड़े सोरठ देस॥

संभली, फाटक पर पहुंची, क्या यह वही पद्मनी देवी है, जिस के लिये इतना रक्तपात किया गया, किसी की दृष्टि इस पर नहीं पड़ी रानी साधारण वेष पहना करती थी,

साधारण स्त्री को कौन रोक टोक करता, मन से पूछा "मैं कौन हूं" फिर स्वयं ही उत्तर दिया।

सोरठ देश के गांव में, लायो एक कुम्हार।
बेटी राजा सिन्धु को, ब्याही राखनगार॥

आगे बड़ी शिविर सा तना था, फिर प्रश्न किया—

यह किस का रणवास है, किस ने तम्बू तानिया।
कहां से आया सेठ, कहां का बानिया॥

एक सिपाही ने सुना, मुस्करा कर उत्तर दिया—

लश्कर यह सिद्धराज का, लूटा सोरठ देश।
मार सहेगा अति घनी, राखनगार नरेश॥
रानक लाया ब्याह कर, किया अधिक अपमान।
रानीथी सिद्धराज को, बनी निपट अज्ञान॥

रानकदेवी—हंसी और कहने लगी :—

ऐसा समरथ को कहां, तोड़े गढ़ गिरनार।
राजों में सब से बली, राजा राखनगार॥
करते धरते जो बना, करत न लायो बार।
रानक देवी ले गया, राजा राखनगार।

वहां एक सफेद घोड़ा खड़ा था, बावली रानी ने उसे अपने राजा की सवारी का घोड़ा समझा, बोली।

घोड़ा राखनगार का, ज्यों सरवर का हंस।
यहां यह कैसे आ गया, छोड़ धनी का बंस॥

दूसरे सिपाही ने बावली समझ कर हंसी से उत्तर दिया॥

बाज बिचारा क्या करे, गया शिकारी छोड़।
राखनगार तो चल बसा, मुख मित्रन से मोड़॥

हाय, कहां गया कैसे गया, हाय।

सारा जग सूना भया, देस नगर भया छार।
शोभा तो सब ले गया, राजा राखन गार॥

सिपाही ने उत्तर दिया वह नदी की ओर गया है।

"तब तो मैं भी उसी ओर चलूंगा।"

पग बढ़ाया, मार्ग में बाग था, पुष्प खिले थे, चम्पा का वृक्ष नवीन विकसित पुष्पों से लदा हुआ लहलहा रहा था, वृक्ष को हिलाया बहुत से पुष्प गिर पड़े उस ने चुन लिये अपने दुपट्टे के अञ्चल में भर लिये, फिर बोली—

चम्पा तुझ में तीन गुण, रूप रंग और बास।
अवगुण तुझ में एक है, भंवर न बैठे पास॥
रंग रूप में क्या बने, जामें प्रेम न प्रीत।
भंवरा लोभी प्रेम का, ऐसा कीजे मीत॥

मुझ में प्रेम प्रतीत है, मुझ में प्रेम प्रभाय।
राखनगार किधर गया, शोभा सकल नशाय॥

कभी हंसती थी कभी रोती थी, परन्तु पग बढ़ाए हुए नदी की ओर जा रही थी कौन जाने राखनगार की मृत देह में क्या आकर्षण था जो उसे बिना जाने अपनी ओर खेंच कर लिये जा रहा था, कोई क्या जाने कि यह कौन है, कहां जा रही है, किस का ध्यान है, किस धुन में मग्न है, बावली स्त्री के पकड़ने व उस को रोक थाम करने में किसी का क्या प्रयोजन, केश बिखरे हुए- घबराया हुआ मुख, आकार से बावलापन टपकता था।

वह लाश पर आई, सिद्धराज के मनुष्य जमघटा बांध कर उसके आस पास खड़े हुए थे, उन्हों ने समझा सम्भव है यह कोई राखनगार की रानी हो, किसी ने उसे नहीं रोका; उस ने उस का पट (कफन) खोला रूप देखा रोई और कहने लगी, प्राणनाथ! यह क्या हुआ. तुम शयन कर रहे हो, जागोगे कि नहीं, महल छोड़कर नदीके तीर पर चले आए, यहां का खुला वायु बहुत पसन्द आया है परन्तु उत्तर कौन देता, मृतक ने कब उत्तर दिया है? उसने देह को हिलाया ध्यान से देखा, समझा, यह लाश है, प्राण निकल गए हैं रक्त से परिप्लुत है, हाय! यह क्या हो गया, क्या राखनगार मुझ को सचमुच छोड़ कर चले गए—

स्वामी तुम चुप हो रहे, अब कीजिये आराम ॥
गिरिए पर्वत शिखर से, तजिए सुख दुख धाम ॥
दस द्वारे का पिञ्जरा, बन्द लगी सब ठौर ।
कैसे पंछी उड़ गया, हंसों का सिरमौर ॥
मुख खोलो कुछ तो कहो, राजा राखनगार ।
छत्रपती सूना पड़ा, जूनागढ़ गिरनार ॥

धीरे २ रात्रि की घटनाएं स्मरण होने लगीं, कुछ सचेत हुई, लाश से लिपट गई, और करुणा स्वर से रुदन करने लगी, नगर निवासी पुरुष स्त्रियों ने सुना कि पटरानी नदी के तीर पर चली गई है, उसे सब मन और प्राण से स्नेह करते थे, मानुषिक प्रेम समुद्र के समान उमड़ पड़ा, असंख्य जन वहां आ पहुंचे, इधर दुर्ग में भी यह समाचार फैल गया कि रानी भाग गई, कर्मचारी उसकी खोज में भागे, भीड़ भाड़ देख कर सिपाहियों ने रानी को लाश पर से परे हटाया, बलात्कार से उसे एक स्थान पर खड़ा किया, जहां से गिरनार पर्वत का शिखर दिखाई देता है, उन्मत्तता ने फिर अपना प्रभाव किया ऐसे समय की उन्मत्तता भी प्रकृति का पुरस्कार है, रानी ने शिर उठाया, पर्वत के शिखर पर दृष्टि गई बोली-

ऊंचा गढ़ गिरनार का, करे गगन सौं मेल ।
राखनगार तू चल बसा बिगड़ गया सब खेल ॥

सिद्धराज को शांति कहां, वह भी लोगों से सुन कर नदी की ओर गया, उस नदी का नाम भोगादा है, वह आया, रानक को शिर से पाओं तक देखा, सौन्दर्य और तेज की दिव्य मूर्ति बन कर खड़ी थी, वैसे तो वह सौन्दर्य का मानो अवतार थी, बावलेपन ने उस के रंग रूप को और भी भड़का दिया था दो चार पल ध्यान से उसकी ओर देखता रहा ।

उन्नसिवां परिच्छेद ।

सच्चा प्रेम ।

सिद्धराज ने मुख खोला "सुन्दरी ! धीरज धर, दुःख से क्या लाभ होगा ।

रानक—तू कौन है ?

सिद्धराज—मैं सिद्धराज पाटन देश का राजा हूं, तेरा प्रेम मुझे यहां खेंच लाया ।

रानक—सिद्धराज ! कौन सिद्धराज, वह कौन है, मैं तो नहीं जानती ।

सिद्धराज—मैंने ही तेरे लिये, अपने प्राणों पर इतनी

विपत्तियां उठाईं राखनगार मेरा शत्रु था उसे रक्तप्लुत भूमि पर सुला दिया।

रानक--फिर उन्हें सोने दे, चेत! उन्हें जगाना नहीं उनको कष्ट होगा।

सिद्धराज—मैंने उसको मार दिया।

अब रानी को फिर चेतना हुई "कायर ! निर्दयी ! कपटी, निर्लज्ज ! दूर हो मेरी दृष्टि से, दुर्मुख ! तूने मेरे पति को कायरों के समान छल से मारा, नीच ! तू क्षत्रिय की बिन्दु नहीं है, तूने छोटे २ बालकों पर दया नहीं की, तूने सर्वनाश किया, अब और क्या चाहता है?

सिद्धराज—तुमको अपने रणवास की शोभा, राजरानी, और अपने प्रेम का आदर्श बनाना चाहता हूं।

रानक—धिक्कार है तेरे साहस पर।

आग लगे तेरे देश को, व्यापे कष्ट क्लेश।
मैं जाने वाली नहीं, छोड़ पिया का देश॥

कहीं से बाणी हुई—सिद्धराज! सावधान, अब क्या करता है? क्या तू नहीं देखता, इस सती पर सत चढ़ा हुआ है, रूप और आकृति से दिव्य ज्योत्सना वर्ष रही है, भय कर इसके शाप से, नहीं तो सती ने जिस प्रकार दक्ष प्रजापति के यज्ञ को विध्वन्स कर दिया था वही तेरा भी परिणाम होगा, रानकदेवी! तू इस मृत्य लोक की स्त्री नहीं है, तू स्वर्ग की देवी है, इस अज्ञानी को शाप न दे।

सिद्धराज ने देखा उसकी माता मनील देवी सन्मुख खड़ी है।

"हा माता! तू मुझे कहीं शान्ति न लेने देगी"।

मनील—मैं ढाल बन कर तेरी रक्षा करती रहती हूं, पाप कर्म से बचाती रहती हूं, तू अपने दुष्कृत्यों से नहीं हटता, यह स्त्री अब इस संसार की नहीं है, यह स्वर्ग की है, इसे कोई बात अब न कह, और न इसे छेड़, नहीं तो तेरा कुशल नहीं है।

रानक—माई! तू कौन है।

मनील—मैं इसकी माता हूं।

रानक—शोक! तू तो भली प्रतीत होती है, यह तेरी कूख से कैसे उत्पन्न हुआ स्वर्ण से हलाहल विष का जन्म कैसे हुआ।

मनील—यह कर्म की गति है, और कुछ नहीं।

रानक—यह मुझको अपवित्र वचनों से दुःख दे रहा है, इसे क्या कहूं यह अपने कर्मों का घोर दण्ड पाएगा, शुभ कर्मों ने इसे राजा बना दिया परन्तु इसके पश्चात् पाटन देश में इसके अंश का एक भी पुत्र जीवित न रहेगा, और जिस प्रकार इसने मुझे सन्तान हीन किया है, इसका नाम लेवा कोई न रहेगा, और सब संसार सर्वदा इसको बुरा कहेगा और यह आप मारा जाएगा।

मनील—हा ! तू ने शाप दे ही दिया, कर्म की गति कौन टाल सकता है।

रानक—माई ! गुरु एक होता है, ईश्वर एक होता है, इष्ट एक होता है, स्वामी एक होता है, पति एक होता है, जिस गुरु ने जिस शिष्य को आत्म तत्व बतलाया है वही समय का सच्चा गुरु है, जो दूसरा गुरु करता है, अथवा कई गुरु धारण करता है, वह पतित और संस्कार भ्रष्ट है, उसको कभी भी गुरु का इस जन्म में साक्षात्कार न होगा, जो एक ईश्वर को छोड़ कर किसी देवी देवता को इष्ट मानता है, वह नीच है, पापी, नास्तिक है, उसकी सद्गति कभी नहीं होगी जो स्त्री एक पति के प्रेम में लीन नहीं हो जाती, वह व्यभिचारिणी, कुल की कलङ्क और वेश्या है उसे न लोक का सुख मिलेगा न परलोक का।

पतिव्रता के एक है, व्यभिचारिण के दोय।
पतिव्रता व्यभिचारिणी, कहो क्यों मेला होय॥
पतिव्रता पति को भजे, पति भजे धर विश्वास।
अन विषय चितवे नहीं, सदा जो पिय की आस॥
पतिव्रता मैली भली, गले कांच की पोत।
सब सखियों में यूं रमे, ज्यों रवि शशि की जोत।

मनील—सत्य है पद्मनि ! सत्य है।

रानक—वर्तमान समय के शिष्य कहते हैं, हम अनेक

गुरु धारण करेंगे गुरमुख उस का नाम है जिस ने गुरु मुख मान लिया, अब कौन गुरु हो सकता है दत्तात्रेय ऋषि के उदाहरण न देखो, वे इस जगत ही को गुरु रूप मानते थे उन को सम्पूर्ण विश्व में गुरु रूप दिखाई देता था कैसे सम्भव है कि किसी मनुष्य के हृदय में पहले एक गुरु की मूर्त्ति प्रतिष्ठित हो गई हो, उस को निकाल कर दूसरे का ध्यान धरेगा, जो स्त्रियें बारम्बार विवाह करती हैं वे धार्मिक रीतियों के अनुष्ठान करने के योग्य नहीं समझी जातीं, मैं राखनगार की हूं वही मेरे पति हैं, गुरु हैं, ईश्वर हैं और सर्वस्व हैं, इस मूर्ख पापी को समझा दे, अपने दुष्ट भाव से दूर रहे, अब मुझे अधिक दुख न दे, मैं जीवित नहीं हूं, मृतक हूं और यह किञ्चित मात्र भी मुझे स्पर्श करेगा। तो अपने आप को नष्ट हुआ समझे।

सिद्धराज मन में भय त्रस्त हुआ, कांप उठा, रानक के वचनों में कुछ ऐसा प्रभाव था कि उस की वाणी सर्वथा बंद हो गई।

मनीलदेवी बोली "सिद्धराज ! तुम सुनते हो, यह सती क्या कहती है। वह चुप रहा तब रानी ने रानक से कहा "तेरी क्या आज्ञा है ?"

रानक—पति के साथ जल जाने दो।

मनील—और कुछ ?

रानक—और कुछ नहीं।

हम प्रश्न करते हैं कि यदि दत्तात्रेय ने समस्

मनील—देवी। सच्ची सति ? इस अनर्थ के मूल तेरे भाञ्जे हैं, उन्होंने स्वार्थ में अन्धे हो कर तुझे यह दिन दिखाए।

रानक—यह कर्म्म की गति है, जो जैसा करेगा, वैसा भोगेगा, मेरी दृष्टि एक मात्र राखनगार को इस समय देखती है मुझे इस समय और कोई दिखाई नहीं देता, मैं इस समय किसी को बुरा भला नहीं कहना चाहती।

मनील—सिपाहियो ? वशील दशील को कर्म्म चन्द सेठ के सहित पकड़ लो।

सिद्धराज—नहीं, माता ? नहीं, मैं उनको इस कार्य्य के बदले में परितोषक दूंगा। पारितोषिक

मनील—पुत्र ! यदि तू इस अवसर पर तनक तनिक भी मेरा विरोध करता है तो देख। यह कहार रक्त पीने के हेतु उद्यत हैं, जिन नीचों ने अपने शरण्य के साथ विद्रोह किया पिता से अधिक दयालु स्वामी से विश्वास घात किया उनसे तू मित्रता की कैसे आशा कर सकता है, तुझ को भी धोखा देंगे।

सिद्धराज चुप हो गया, दशील वशील पकड़ कर लाये गये कर्मचन्द भी पकड़ा गया।

मनील—क्यों कृतघ्नों ! तुम क्यों निर्दोष जनों की हत्या के कारण हुए।

वशील—प्राण दान दीजिये (भय से कांपते हुये) पापी हुए, दशील ! क्यों रानी से कुछ विनता नहीं करता।

दशील—तुम स्वयं कह रहे हो।

रानी—सिपाहियो ! मेरे सामने इन तीनों का सिर काट दो तीनों अपराधी रानक के सन्मुख बुरी भांति से वध किये गये।

मनीलदेवी ने राखनगार के मन्त्री को बुला कर समझाया जब तक कोई राखनगार का सम्बन्धी न मिले, तुम सिद्धराज के नाम से राज्य करो पश्चात् यद्यपि यह देश पाटनदेश के आधीन रहेगा परन्तु किसी अधिकारी का अधिकार नहीं छीना जाएगा, तुम असावधान और राखनगार के विरुद्ध अपराधी हो, परन्तु क्योंकि राजभक्त रहे हो इस लिये तुम्हारा अपराध क्षमा किया जाता है। जाओ नगर का प्रबन्ध करो किसी प्रकार का उपद्रव न मचने पावे।

समग्रजन समुदाय इस स्त्री की तत्वबुद्धि को देख कर आश्चर्य्य रहगया सिद्धराज से भी उस समय कुछ कहते सुनते बन नहीं पड़ी।

बीसवां परिच्छेद

परिणाम

"परिणाम जो अच्छा हो तो अच्छे हैं सभी काम"

मनोलदेवी ने विलाप करती हुई रानकदेवी के आंसू अपने आंचल से पोंछे, उसका हाथ पकड़ लिया, पुत्री ! जो होना था, वह होगया, प्रारब्ध के लेखको कोई मिटा नहीं सकता, मनुष्य देवताओं के हाथकी कठपुतलियां हैं जो नाच वे चाहते हैं नचाते हैं, तू धीरज धर और आनन्द से अपने पति के साथ अपने धर्म्म को पूर्ण कर अब कोई मनुष्य इसमें बाधक न होगा मनुष्यों के दल के दल मनुष्य रानकदेवी के पीछे २ राखनगार की लाश के निकट आए, मनोलदेवी के सद्व्यहार ने आन की आन में शत्रुओं को मित्र बना लिया, रानक पति की देह पर गिरी और उसके चरण पकड़ विलाप करने लगी, बहुत समय रुदन और विलाप में व्यतीत हुआ।

इधर चिता सजाई गई, रानकदेवी उठ खड़ी हुई, लोगों ने देह को उठा कर चिता पर रख दिया, रानक ने पति के

सिर को अंक में रख लिया, मनोलदेवी ने महल से उसका सुहाग का डिब्बा मंगा दिया था, सती ने इस सिन्धूर को हाथ में ले लिया।

मन्त्री आया चिता की परिक्रमा की, फिर कर जोड़ कर सन्मुख आया "शोक! माता! हम मर नहीं गए, खाये हुए अन्न से उऋण नहीं हो सके और तुमको इस दशा में देखते हैं, फिर सेनापति ने भी चिता का पूजन किया रानक ने उनसे कहा "पुत्रो! मेरे अंक को निर्दयी ने पहिले से ही खाली कर दिया तुम आज धर्म के पुत्र बनो, अपने पिता की चिता प्रज्व-लित करो, तुम्हारे बिना और अब किस से कहूं'।

सेनापति ने अग्नि जलाई फिर पांच बार परिक्रमा कर के सती की पीठ की ओर से अग्नि लगा दी, चिता प्रज्वलित हो गई घृत और सामग्री से अग्नि की शिखाएं उन्नत होने लगीं चन्दनकी लकड़ियाँ अग्निकी शिखाओंसे अन्तरिक्ष मण्डल में सती के सतीत्व को सुगन्धित कर प्रकाश रूप से व्याप्त करने लगीं रानक ने हाथ उठाया यह शब्द उसके मुख से सब ने सुने।

जन्म जन्म हूं पति परायण जन्म जन्मपति की सेवा।
जन्म जन्म हो भक्ति पति की और न पूजहूं कोई देवा॥
पति मेरे परशोत्तम प्यारे, जीवन प्राण पति प्यारे।
मेरे मन पति की मूरत, पति नयनन के हैं तारे॥

पति पर तन मन सब कछु वारूं, पति के नाम से काम मेरा ।
मैं हूं सती सीता की पुत्री, पति राम विश्राम मेरा ॥
अग्नि के रथ पर बैठी हूं, पति के देश को जाती हूं ।
पति के रंग रंगी है प्रेमिन, जग को आग लगाती हूं ॥
देह पति को गेह पत्नी का, गेह पती की मन भायी ।
आरति करने पति की निस दिन आरति सामग्री लाई ॥

अग्नि की शिखाएं ऊंची हुंई, प्रचण्ड अग्नि ने रूप सम्भाला सहस्रों जिह्वाओं से वह रानक को इस प्रकार चाटने लगी जिस प्रकार स्तेह से गौ अपने बछढ़े को चाटती है, थोड़े समय में ही रानक ने अग्नि का रूप धारण किया, वह स्वर्ण के समान दमकने लगी उसका पार्थिव शरीर अग्निमय हुआ र सौवर्ण कान्ति से भासित होने लगा, शरीर के अन्दर छुपे हुये आत्मिक तेज ने फिर दोबारा तेजोमय सौन्दर्य का परिधान पहिन लिया तत्व अपने तत्व में जा मिला, सौर पार्थिव शरीर जल बल कर मट्टी का ढेर होगया, चारों ओर से धन्य धन्य और जय जयकार की ध्वनि गूंजने लगी ।

यह रानक देवी के लौकिक जीवन का परिणाम हुआ, और धन्य हैं वे स्त्रियें जिनके जीवन का परिणाम ऐसा होता है उनका जोवन संसार में सुफल होता है, और वे

केवल दोनों कुलों को उज्जल ही नहीं करतीं बरञ्च लोक परलोक दोनों को सुधार लेती हैं, पुत्री की अशीश उसके लिये अक्षर अक्षर सत्य हुई; गुजरात की स्त्रियें अब तक उसका नाम आदर और मान से लेती हैं।

राखनगार के महल का चिन्ह तक भी इस समय नहीं है, सिद्धराज ने इस करुणामयी घटना से दुखी होकर चिता के स्थान पर एक पक्का मकान उसकी चिरस्मृती के हेतु बनवा दिया, वह अब तक विद्यमान है और लाखों हिन्दू पुरुष व स्त्रियां वहां श्रद्धा और भक्ति से दर्शन करतीं और भेंट पूजन आदि से आशीश मांगती हैं।

यह वेदान्त की सच्ची शिक्षा है, जो रानक देवी अपने जीवन से हमको सिखाती है, गुरु आशीर्वाद दें हम भी उसी प्रकार गुरु परायण हों।

एक नावको जान कर, दूजा देव विहाय।
जप तप तीरथ व्रत नहीं, सतगुरु चरण समाय॥
सब आए उस एक में, डाल पात फल फूल।
अब कहो पीछे क्या रहा, गेह पकड़ जब मूल॥
मैं अबला पियो पियो करूं, निर्गुण मेरा पीव।
प्रेम सनेही गुरु बिन, और न देखूं जीव॥

(परम सन्तकबीरसाहब)

* इति *

Remarks! By Prem Singh Gurkha, Prem
लेखक महोदय एक पंडाल

शाही-माला के सर्व प्रिय उपन्यास

लेखक—बाबू शिवव्रतलाल वर्म्मन

शाही लकड़हारा

प्रारब्ध की विचित्र गति देखना हो तो इस पुस्तक को पढ़ो, राजा का पुत्र काल की गति से किस प्रकार लकड़हारे का काम करता हुआ सैंकड़ो प्रकार के कष्ट सहता है और कैसे फिर राज सिंहासन पर बैठता है, ऐसी मनोरंजक और करुणा-रस से भरी हुई पुस्तक आज तक इसके जोड़ की दूसरी नहीं बनी। निर्धनता से पीड़ित और दुखी गृहस्थों को यह पुस्तक एक हितैषी मित्र के समान धीर बंधाती है। सच पूछो तो इस पुस्तक को उपन्यास कहना ही भूल है। प्रारब्ध के जटिल प्रश्न को समस्या करने में तो यह पुस्तक एक शास्त्र कहा जा सकती है, रोचक ऐसी है कि एक बार इसके पहिले पृष्ठ को पढ़ लो, और फिर यदि समाप्त किये बिना रोटी खा लो तो मूल्य वापिस। भाषा बड़ी ही सरल और सरस है, स्त्रियों और पुरुषों दोनों ही के लिये शिक्षा-दायक है, स्थान स्थान पर रंगीन चित्रों से सुसज्जित है। मूल्य २)

पताः—नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़ लाहौरी गेट लाहौर

शाही डाकू— I have read

मुगल सम्राट् के साथ एक छोटी सी राजपूत रियासत का तुमुल युद्ध, इस पुस्तक में राय देवा नाम के एक छोटे से राजपूत नरेश की वीरता; नीति निपुणता, जासूसी और चातुर्य्य का वर्णन किया गया है। दिल्लीपति मुगल सम्राट के राज्य में अनेक भीषण डाके डालकर इसने समाट को नाकों चने चबवाए थे। राय देवा की वीरता का साखी पढ़कर कायर भी एक बार फड़कने लगते हैं, इसकी जासूसी को पढ़ कर हंसते हंसते लोट पोट न हो जाओ तो दाम वापिस। राजपूत स्त्रियों का पतिव्रत धर्म इस में विशेष पढ़ने के योग्य स्थल है। मुगल शासन का पूरा पूरा चित्र इस में दिया गया है, हिन्दु जाति पर अत्याचार उनके धर्म पर कुठार यह लोग किन किन उपायों से करते थे, यह सब बातें यदि जान ने की इच्छा है, तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये। पुस्तक बड़ी ही रोचक है ॥ मूल्य १॥) रंगीन जिल्द १॥।) रेशमी जिल्द २)

शाही भिकारी I have read

यथा नाम तथा गुण, कहां शाह और कहां भिखारी कहां राजा भोज और कहां गंगा तेली। परन्तु परमात्मा का संकल्प और दैवगति नहीं जानी जाती। इस पुस्तक में एक कुमार और एक राजकुमारी का वर्णन है, जो दोनोंही राजाओं

के घर में जन्म लेकर भी मांग मांग कर उदरपूर्ति करते थे, परन्तु ईश्वर ने किस प्रकार उनकी विपत्ति के दिन पूरे करके दो बार राज्य सिंहासन पर बैठाया। ग्रह गति को जो लोग नहीं मानते, उनके लिये यह पुस्तक अवश्य पढ़ने योग्य है, ग्रहगति विषयक सभी शंकाएं अत्युत्तम युक्तियों द्वारा इस में दूर कर दी गई हैं। पुस्तक अति रोचक और भाव पूर्ण है स्त्री और पुरुष दोनों के लिये लाभदायक है। सुन्दर रंगीन चित्र सहित है। मूल्य १॥)

शाही जादू गरनी

इस में एक आसाम की रानी का वर्णन है, जो कि जादू से काम लेती थी और जिसका जादू इस पुस्तक के पढ़ने ही से प्रतीत हो सकता है। यह पुस्तक उपन्यास के रूप में लिखी गई है, अपने ढंग का यही एक पहिला उपन्यास है, जिसको पढ़ कर पतित स्त्रियों के चरित्र से बड़ी शिक्षा मिलती है और पाप पूर्ण जीवन से घृणा होने लगती है। यदि आप त्रियाचरित्र का पूरा पूरा हाल चाहते है, तो इस उपन्यास को अवश्य पढ़िये। मूल्य १॥)

नारी धर्म ग्रंथमाला।

यह सीरीज़ स्त्री शिक्षा के लिये जारी किया गया है। जिस में प्राचीन स्त्रियों के मनोहर व शिक्षाप्रद जीवन वृत्तान्त

पताः—नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़ लाहौरी गेट लाहौर

और इसी प्रकार स्त्री धर्म्म उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की जा रही हैं । निम्न लिखित पुस्तकें इस ग्रन्थमाला में इस समय तक निकल चुकी हैं:—

माता और पुत्र—आदर्श सन्तान पालन

(लेखकः—श्रीयुतचण्डी चरण बैनर्जी)

यह पुस्तक श्रीयुत चण्डी चरण बेनर्जी प्रणीत मातार छेले नामक बङ्गला पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है, यह पुस्तक उपन्यास के ढंग पर लिखी गई है, इसमें बतलाया गया है कि अपनी सन्तान को माता-पिता किस प्रकार तेजस्वी, बलवान, शुद्धाचारी और देश व जाति के लिये उपयोगी बना सकते हैं बालकों की शिक्षा का कैसा प्रबन्ध होना चाहिये इत्यादि. इस पुस्तक को पंजाब टैकस्ट बुक कमेटी ने पंजाब प्रान्तकि सरकारी पाठशालाओं के पुस्तकालयों के लिये अपने सरकुलर नम्बर ४ तारीख २६।१०।२६ को मंजूर फरमाया है और इसकी कई एक प्रतियां खरीद कर पाठशालाओं को भेजी हैं यह पुस्तक माताओं के लिये बड़ी उपयोगी है माता-पिता को यह पुस्तक खरीद कर अवश्य पढ़नी चाहिये और इस के बताये हुए उपायों पर अमल करना चाहिये क़ागज बढ़िया ऐंटिक पेपर शुद्ध, स्वच्छ और सुन्दर छपाई टाइटिल पेज पर तीन रंगा ब्लाक मूल्य केवल १॥=)

शकुन्तला

(लेखकक कविराज जयगोपाल)

संसार प्रसिद्ध महाकवि कालीदासके जगत व्यापी संस्कृत नाटक का उपाख्यान रूप में हिन्दी भाषान्तर है। शकुन्तला कों पढ़कर जर्मनी के महाकवि (गेटी) ने मुक्तकंठ से कहा है कि यदि स्वर्ग और मर्त्य की समस्त शोभाएँ एक ही स्थान पर देखनी हों तो शकुन्तला पढ़ो। इस पुस्तक की एक एक पंक्ति कवित्व और कल्पना कौशल से परिपूर्ण है प्रत्येक बालक बालिकाओं के पढ़ने योग्य है और शिक्षाप्रद है मूल्य ।||)

I have read

अञ्जना देवी

(लेखकः—श्रीयुत् पं० रामस्वरूप शर्म्मा 'शार्दूल")

हनुमान की माता का जीवन वृतान्त भारत की देवियों के लिये आदर्श चरित्र, अञ्जना देवी पर बुहतान, सुसराल और पिता के घर से निकाला जाना, जंगल बसेरा, हनुमानजी का जन्म, श्री पवन जी की युद्धसे वापिसी, अञ्जना के माता पिता और सास सुसर का पश्चाताप, श्री पवन का अञ्जना को खोज मे निकलना, इत्यादि बातों पर रोशनी डाली गई है, पुस्तक बड़ी ही रोचक और स्त्री पुरुष दोनों के पढ़ने योग्य है शुध स्वच्छ और सुन्दर छपाई कागज बढ़िया एँटिक पेपर टाईटल पेज पर तीन रंगा फोटो ब्लाक भी दिया है। मूल्य केवल ।||)

पता:—नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज लाहौरी गेट लाहौर